# नाम दान

**( परमसंत परमदयाल पं. फकीर चन्द जी महाराज मानवता मंदिर, होशियारपुर कृत नाम दान या दीक्षा का रहस्य )**


स० सम्पादक–

**देवीचरन मीत्तल**

लेखराज नगर, अलीगढ़



**सम्पादक, प्रकाशक–**

**नन्दू भाई**

**शिव साहित्य प्रकाशन**

**दयाल नगर, अलीगढ़**



**सर्वाधिकार सुरक्षित**


# विषय - सूची


| क्रम संख्या | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1 | प्रार्थना | 1 |
| 2 | भूमिका | 2–5 |
| 3 | नाम दान | 6–22 |
| 4 | जीवन सुधार के उपाय | 23–3 |
| 5 | संतमत और साधन | 3–39 |
| 6 | सारभेद | 39–51 |
| 7 | नाम दान या दीक्षा का दिन | 51–55 |
| 8 | साधन ज्ञान विचार | 56–57 |

**R. S.**

**गुरूब्रह्मा गुरुविष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।**
**गुरु साक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।**

# चेतावनी

नाम सुमिर भव तरना है हाँ।।

नर देही भव सागर तरनी, दया से हाथ में आयी।
जो कोई इसका सार न जाना, बिरथा जनम गंवाई।। तरना०

नाव पड़ी मंझधार में तेरी, खेवट सतगुरु पूरा।
नाम सुमिर जा भव जल पारा, जो माया रन सूरा।। तरना०

नाम मंत्र से बस में आवे, काल कराला नागा।
नाम पाय जो नाम न सुमिरे, विष से मरे अभागा।। तरना०

एक नाम से सब ही मिलते, नव निधि सिद्धि शक्ति।
जीते जी नर पावे मुक्ति, करे जो नाम की भक्ति।। तरना०

राधास्वामी नाम सार है, सार सार का सारा।
जो सुमिरे यह नाम निरन्तर, सहज जाय भव पारा।। तरना०



# *प्राक्कथन*

कुरुक्षेत्र निवासी एक विद्वान सज्जन, इस पुस्तक के लिखे जाने का कारण है जिनका नाम परमदयाल जी ने सारभेदी ब्राह्मण रखा है, और नाम की दीक्षा दी है। पुस्तक में उपदेश तो उनको दिया गया है मगर यह सारे संसार के लिये धार्मिक जगत में पथ–प्रदर्शक या गाइड है। साधारणतया अभी तक लोग इसी को नाम समझते हैं कि किसी गुरु या महात्मा ने कान में मंत्र फूँक दिया या कुछ नाम जप आदि बता दिया। इस पुस्तक में इन सब बातों का वर्णन इस सुन्दरता से किया गया है कि हर एक व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी हो भली प्रकार नाम की महिमा को समझ सकता है।

इम पुस्तक में नाम क्या है, कैसे लिया जाता है आदि नाम की प्राप्ति कैसे होती है, क्या–क्या साधन करना पड़ता है, नाम दीक्षा क्या है, इसका अधिकारी कौन है, आदि नाम कौन दे सकता है नाम की महिमा, नाम के साधन, नाम जप, ध्यान आदि को सविस्तार वर्णन किया गया है। यह संसार के लिये एक अमूल्य निधि जो महाराज जी ने संसारी जीवों के लिये प्रदान की है।

नाम की दीक्षा के सन्बन्ध में जितना भ्रम फैला हुआ है या अनसमझी से लोग भटकते ही रहते हैं और उनको कुछ प्राप्त नहीं होता। उन सब बातों का समाधान और स्पष्टीकरण इस पुस्तक में किया गया है। जो लोग पढ़ेंगे, विचार करेंगे उनके सम्पूर्ण संदेह निवारण हो जायेंगे और नाम की, गुरु की, जप की तथा साधन मार्ग मिल जायेगा कि वह क्या करे।

आशा है प्रेमी जन इससे लाभ उठायेंगे।

**–देवीचरन मीतल**

**गुरूर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।**
**गुरु साक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।**

# प्रार्थना

**नामदान दान दीजे, गुरु दीन दयाल।**
**चरण का नित ध्यान सुमिरन, चित न व्यापै काल।।**
**सर्व समरथ सर्व अङ्ग संग, सर्व जगत अधार।**
**शुद्ध मन से पद कमल का, करूँ निश दिन प्यार।।**
**सिंध भव अति अगम दुस्तर, सूझे वार न पार।**
**विकल मन रहे सोच छिन छिन कैसे जाऊं किनार।।**
**दया कीजे महर कीजै, लीजै चरण लगाय।**
**भक्ति दीजै तार लीजै, कीजै मेरी सहाय।।**
**शब्द में रत रहूँ, पल पल, सुरत पावै चैन।**
**राधास्वामी दया सागर, भंजू मैं दिन रैन।।**





# भूमिका

मैं संसार में आया। चेतनता आई। अपना आदि जहाँ से मैं आया था, इसकी खोज में निकला। मौज मालिक मुझको दाता–दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज के चरणों में ले गई। वहां से अपनी आदि अवस्था को प्राप्त करने या सर्वांधार का साक्षात्कार करने के लिये मुझको नाम दान मिला था। मेरे अन्दर वह सब संस्कार पूर्णरूप से थे, जो मैंने सनातनधर्म की पुस्तकों से अपनी समझ बूझ के अनुसार प्राप्त किये थे। संतमत राधास्वामी मत, कबीर मत की विचारधारा सनातन धर्म की विचारधारा से बिल्कुल भिन्न थी। उस समय मैंने प्रण किया था कि मैं इस रास्ते पर स्वयं चलूंगा और जो मेरे निज अनुभव होंगे वह मैं संसार को बता जाऊँगा।

दाता दयाल ने मेरे जिम्मे तीन काम सौंपे थे। पहिली ड्यूटी नाम देना और निर्बल, अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता करना। दाता दयाल का कथन है–

**तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।**
**दुखी जीव को अंग लगा कर, लेजा गुरु के देसा।।**
**तीन ताप से जीव दुखी हैं, निबल अबल अज्ञानी।**
**तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी।।**

दूसरी ड्यूटी थी– जगत कल्याण के लिये काम करना। वह कहते हैं–

**तेरा रूप है अद्भुत अचरज, तेरी उत्तम देही।**
**जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल सनेही।।**

तीसरी ड्यूटी थी– जीवों को भवसागर से निकाल कर अपने निज घर में पहुँचाना।

मैंने अपने अनुभव के आधार पर सन् १९४२ ई० के बाद किसी व्यक्ति को भी नाम दान नहीं दिया। इसके मुख्यकारण को मैंने इस पुस्तक में वर्णन किया है मगर मुझे अचम्भा होता है कि मौज किस प्रकार काम करा लेती है। मैंने सन १९४२ के बाद केवल सत्संग ही कराये हैं। घरेलू और मानसिक जीवन कैसे और किस तरह बनाया जाये, इसके विषय में बहुत कुछ कहा है। सन्तान उत्पन्न करने

तथा जगत कल्याण के लिये तथा पोलीटिकल लाइन पर काम करने के तरीके बतलाये हैं मगर जो काम कुदरत का लेना होता है वह डंडे मार कर लेती है।

मौज ने एक ज्ञानी ब्राह्मण को जिनका नाम पहिले मुझे मालूम नहीं था, मेरे पास भेजा। वह हैं पं० दौलतराम, जो किसी समय नीलू खेड़ी में एडमिनिस्ट्रेटिव बोर्ड के प्रधान रहे हैं। वह बड़े विद्वान हैं। अंग्रेजी के भी विद्वान हैं। ज्योतिष विद्या में वह बड़े प्रवीण हैं। उसी ज्योतिष विद्या के आधार पर नाम की दीक्षा के लिए २१नवम्बर ६९ के प्रात:काल का महूर्त निकाला हुआ है। अमीन ग्राम जिला कुरुक्षेत्र में वह मुझसे मिले। मैंने उनसे कहा था कि वह १५ नवम्बर ६९ को होशियारपुर आ जाँये। पहिले कुछ दिन सत्संग करें। मैंने इनको चार सत्संग दिये हैं। यही मेरा नामदान है। यदि कोई व्यक्ति समझ बूझ रखता है और वह मेरे इन विचारों को ध्यानपूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा तो वह आप ही आप असली नाम की ओर झुक जायेगा। वह अपने मन को गढ़त करने और साधन अभ्यास करने योग्य हो जायेगा। फिर भी मनुष्य का अहंभाव (खुदी) नहीं जाता है। इस अहंभाव का दूर करने के लिये यह परमावश्यक है कि मनुष्य किसी जगह जाकर अपना सिर झुकाये।

आज कल हमारे देश में गुरुमत की शाखायें अनेकों जगह हैं मगर मैं निर्भय होकर कहना चाहता हूँ कि सिवाय विशेष विशेष महापुरुषों के जितने आचार्य लोग हैं, यह जीवों के हित के लिये नाम की दीक्षा नहीं देते हैं किन्तु अपने मान, डेरा धाम और गद्दी के लिये काम करते हैं।

मुझको दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज ने सन् १९३३ ई० में सुनाम स्टेशन पर जहाँ मैं स्टेशन मास्टर था, आम सत्संग में यह कहा था कि फकीर! जमाना बदल जायेगा, धर्म सम्प्रदाय प्रभावहीन हो जायेंगे, यहाँ तक कि मेरी वर्णनशैली भी सर्व साधारण के आकर्षण का कारण न रहेगी। उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि चोला छोड़ने से पहिले सन्तों की शिक्षा को बदल जाना। ऐ भारत वासियो! मैं किसी बात का दावा नहीं करता हूँ। मैंने सतपद की खोज के क्रम में जो कुछ अनुभव किया है वही कहता रहता हूँ। हो सकता है मेरा अनुभव गलत हो मगर मेरी नीयत ठीक है। गुरु आज्ञा वश निर्भय होकर सन्तों का चोला पहिना है।





दाता दयाल एक शब्द में लिखते हैं–

**'सगुन रूप तेरा है संत मते का सार'**

इससे उनका क्या भाव था वह ही जानते होंगे मगर मैंने इस सन्त मत की शिक्षा को हर पहलू से अपने क्रियात्मक जीवन में और रहनी के जीवन में बदला है। मैं सच कहता हूँ कि मैं भी गिरता रहता हूँ, मगर मैं गिरावटों को छुपाता नहीं हूँ। इसलिये मैंने जो कुछ नाम दान को समझा है वह नाम दान का काम किया है। कौन इसका अधिकारी है, और यह किसको कैसे प्राप्त हो सकता है इसका वर्णन इन चार सत्संगों में कर दिया है।

एक ज्योतिषी ने मुझको बताया था कि तुम्हारे ग्रह ऐसे पड़े हैं कि पिछली आयु में इन ग्रहों का प्रभाव तुम्हारे नवें घर पर पड़ता है। आप क्या काम करेंगे मैं नहीं कह सकता। कुदरत दाता दयाल के वचनों के अनुसार जबरदस्ती इस ओर घसीट रही है और मैं यह काम करने के लिय विवश हो रहा हूँ।

यह मेरा साहित्य उन सज्जनों को मेरी भेंट है जो सचमुच अपने घर का पता लेना चाहते हैं या आवागमन के चक्र से निकलकर बचना चाहते हैं अथवा संसार में सुख शान्ति और अचिन्तपना चाहते हैं। आप यदि परमार्थ चाहते हो तो धन, सम्पत्ति और स्त्री (जर, जमीन और जन) को भाग्य के अर्पण कर देना होगा। जब तक इनकी इच्छा बाकी रहेगी तब तक परमार्थ किसी को नहीं मिल सकता। यदि कोई गुरु समर्थ है तो तुमको जर, जन और जमीन या कंचन और कामिनी के बन्धनों से निकाल ले जायेगा। कर्मयोग से, भक्तियोग से और ज्ञान योग से वह तुम्हारी सहायता करेगा। अब मैं जितना इस दुनिया में सुखी हूँ शायद कोई भी आदमी नहीं होगा। अब मैं ८२–८३ वर्ष का हो गया हूँ। शरीर मेरा ठीक है। दातादयाल मुझे ऐसे गुरु मिले थे जिन्होंने मेरा दीन (परमार्थ) भी बना दिया और मेरा सांसारिक जीवन भी बना दिया। नाम की प्राप्ति मैंने भी कर ली है। यदि तुम लोग जीवन का उद्धार चाहते हो तो इसका तरीका तुमको बतला दिया जाता है। गुरु के चरण प्रकाश हैं। तुम अपने अन्तर में प्रकाश में चले जाओ। यही गायत्री मंत्र भी कहता है। तुम मुझसे नाम लेना चाहते हो। अपने मन को एकाग्र करने के लिये मैं शब्द राधास्वामी कहूँगा। तुम्हारा जी चाहे इसे ग्रहण करो या न करो। मैं पुरानी

प्रणाली का तोड़ना नहीं चाहता मगर वास्तव में असली नाम शब्द और प्रकाश है। पारब्रह्म और शब्द ब्रह्म है।

तुम्हारे मन में जो तरह तरह के विचार हमेशा उठते रहते हैं उन्हें त्यागना है। वह तब ही जायेंगे जब तुम्हारी सुरत प्रकाश और शब्द में लगेगी। यही गायत्री मंत्र का सारांश है। जब तक किसी की सुरत पारब्रह्म और शब्द ब्रह्म से आगे नहीं जायेगी उसका आवागमन समाप्त न होगा। इस पारब्रह्म और शब्द ब्रह्म का देश ऊपर है। इसका प्रतिबिम्ब तुम्हारे अन्तर में पड़ा हुआ है। कुछ दिनों बाहर के गुरु का सत्संग करो। फिर ऐसा साधन अभ्यास करो जिससे तुम्हारा अहंकार टूट जाये। दुनियां में एक स्थान ऐसा होना चाहिये जहां मनुष्य अपना शिर नवाये ताकि इसका मिलना मैंपना जाता रहे। असली वस्तु प्रकाश तुम्हारे अन्तर में है। मुझको क्या मिला है? इस नाम से मैं वहां पहुँचा हूँ जहां नाम नहीं है। नाम का सम्बन्ध प्रकाश और शब्द तक ही है। नाम का फल परम शान्ति है। यदि परमार्थ चाहते हो तो दीन हीन बनो। पंडित जी ! तुम एक दो दिन मेरा सत्संग और सुनो। फिर मैं तुमको २१-११-६९ के प्रातः संस्कार (Touch) दे दूँगा।

**फकीर**





# नाम दान
# प्रथम सत्संग

**शब्द**

**दीन हीन शरण में आया, कीजै आप सहाय।**
**काल का भय आज मेटो, अपने चरण लगाय।।**
**सिंध भव अति अगम दुस्तर, सूझे वार न पार।**
**हो दया की दृष्टि साईं, नाव है मँझधार।।**
**पतित पावन, तरन तारन, यह तुम्हारा नाम।**
**बाल विनती सुनो चित से मन को दो विसराम।**
**ज्ञान नहिं परमान नहिं, अनुमान से नहिं काम।**
**शब्द का दे आसरा प्रभु, बख्श दीजे नाम।।**
**नाम दान प्रदान कीजै, नाम तरन महान।**
**राधास्वामी दयासागर, कीजै अब कल्यान।।**

आज एक पंडितजी कुरुक्षेत्र निवासी, जिन्होंने यहां 'मानवता मन्दिर, में अपने लड़के का ब्रह्म विवाह किया था, मुझे अमीन गांव में मिले थे। आज वह नामदान लेना चाहते हैं।

मैंने अपने जीवन में अज्ञानवश सन १९४२ तक लोगों को नाम दान दिया था। जब से मुझे इस नाम की महिमा का पता लगा मैंने किसी को भी नाम नहीं दिया। यों तो मैं नाम देता, रहता हूँ। वह पंडित जी मुहूर्त निकाल कर आये हैं कि २१ नवम्बर ६९ को नाम दान मिले। मुझे भी सन १९०५ ई० में नाम दान मिला था।

नाम क्या है? पहिले मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि तुझको इस नाम से क्या मिला है? तुझको भी दाता दयाल ने नाम दिया था। मुझे इस नाम दान से यह मिला कि अब नाम का खब्त ही छूट गया मगर मेरी इस बात को कौन समझेगा। इस नाम ने मुझको वहां पहुँचा दिया है जहां नाम ही नहीं रहता है।

दुनियां अचम्भे में होगी कि नाम कहां नहीं रहता है। राधास्वामी मत की पुस्तकों में लिखा है कि सब से पहिले अनाम गति थी, जहाँ नाम, रूप, रंग और

रेखायें नहीं थे। इसमें गति हुई तब नाम प्रगट हुआ।

**शब्द गुप्त तब रहा अनाम।**
**शब्द प्रगट तब धरिया नाम।।**

यह बात सनातन धर्म में कही है कि सबसे पहिले सत को असत ने ढक रखा था। सत है प्रकाश (व्यक्त होना) या नाम। असत है अवगति या अनाम गति। मुझको यह नाम मिला कि मुझको अब नाम की आवश्यकता ही नहीं रहती। अब मेरे लिये नाम समाप्त हो गया मगर इस बात को हर एक आदमी नहीं समझ सकता।

मैं अपने आप से पूछता हूँ कि तुझको नाम की इच्छा क्यों पैदा हुई। मैं अपने जीवन का अनुभव कहता हूँ। मुझे मालिके कुल से जहाँ से मैं आया हूँ, जिसने मुझे बनाया है उससे मिलने की खोज थी छोटी आयु से। उस समय मुझे पता नहीं था मगर मेरे दिल के अन्दर एक कुरेद थी। मेरा अपना आप कुछ चाहता था। इसका मुझको पता नहीं था। इसको मैं राम समझता था अथवा भगवान समझता था।

नाम का संस्कार दाता दयाल ने मुझको दिया था। यों तो मैं रामायण विष्णु सहस्रनाम का पाठ किया करता था। मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता थी या कुरेद थी। वह खोज या कुरेद एक दृश्य द्वारा मुझको दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज के चरणों में ले गई, जहां से मुझे इस नाम का संस्कार मिला था। वह नाम क्या है और जहां नाम नहीं रहता है वह अवस्था क्या है? उस अवस्था का नाम है शान्ति परम शान्ति। मनुष्य क्या चाहता है? शान्ति! मगर सब लोग शान्ति नहीं चाहते हैं यद्यपि शान्ति ही इष्ट पद है। नाम के प्राप्त करने का उद्देश्य ही शान्ति है। सनातन धर्म के जितने कर्म होते हैं उन सब के अन्त में शान्ति का पाठ होता है–ओउम् शान्ति! ओउम् शान्ति!! ओउम् शान्ति!!! यही बात इस पवित्र विभूति ने जिसने राधास्वामी मत चलाया है कही है–'घात माया ने की बहु भाँति। निरखदे बख्शी मोहि शान्ति।' यही इष्ट पद है। हुजूर महाराज का कथन हैं–

**परम गुरु राधास्वामी दाता रे।**
**वही मेरे जीवन के आधारे।।**





**गाऊँ मैं किस विधि महिमा भारी।**
**करी मोपै महर दया अति भारी।।**
**सुरत चरनन में खेंच लगाय।**
**लिया मोहि कृपा कर अपनाय।।**
**शब्द की गति मति अगम अपार।**
**सिखाई घट में कृपा धार।।**
**दिखाकर मन के सभी विचार।**
**दयाकर लीने सहज निकार।।**
**जगत के भोग सभी दिखलाय।**
**भाव इन चित से दिया हटाय।।**
**पकड़ मेरी ढीली कर तन मन।**
**कराये गुरु चरनन अर्पन।।**
**दया मोपै अन्तर अस कीन्ही।**
**परख मोहि बाकी वहीं दीन्ही।।**
**घात माया की बहु भांति।**
**निरख दे बख्शी मोहि शान्ति।।**

तो नाम जपने का परिणाम क्या निकला? शान्ति। यह पंडित जी आये हैं मुझसे नाम दान लेने के लिये। मैं पाखंड का नाम नहीं देना चाहता। मैंने इनसे कहा था कि कुछ दिन सत्संग कर लो, फिर नाम दूंगा। प्रथम तो मैं देता कुछ नहीं हूँ मगर चूंकि यह अधिकारी हैं मैं इनसे वायदा करके आया था। अब यह आ गये हैं। नाम के लिये किन शर्तों की आवश्यकता होती है वह मैं सुनाता हूँ।

**दीन हीन शरण में आया, कीजै आप सहाय।**
**काल का भय आज मेटो, अपने चरन लगाय।।**

## नाम व अधिकार

यह शर्त है। इस मार्ग में दीन और हीन होना पड़ता है। दीन उसे कहते हैं जो कोई वस्तु चाहता हो और उसे प्राप्त करना चाहता हो। इसमें अपनी शक्ति नहीं होती। दूसरों के आधीन होता है। हमारी आत्मा या हमारा आपा किसी से बचना

चाहता है। इसको कष्ट है। इसमें अशान्ति है। उस दुख का कारण क्या है? काल का भय। काल क्या है? काल कहते हैं समय को। यह जो संसार है इसमें कल्प कल्पान्तर आते रहते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग आते रहते हैं। बचपन, जवानी, बुढ़ापा आते रहते हैं। हमारा जो अपना आप है, इस संसार में परिवर्तनशील होता है। इससे जब दुखी हो जाता है, तब ही वह शान्ति चाहता है, यह संसार परिवर्तनशील है। गरीबी है, अमीरी है। बचपन है, जवानी है, बुढ़ापा है, हर जगह परिवर्तन है। पृथ्वी, आकाश, सितारे, लोक लोकान्तर सब में परिवर्तन है। रचना बनती और बिगड़ती रहती है। इस परिवर्तन शाील जगत में हर एक व्यक्ति दुखी रहता है जो शान्ति चाहता है वह नाम का अधिकारी होता है। फिर नाम क्या है? वह नाम है शान्ति! मैंने आपको अपना अनुभव सुना दिया है। मैंने नाम को क्या समझा है। मुझे नाम जपने से क्या वस्तु मिली है। जब कोई व्यक्ति दीन हीन होकर गुरु के पास जाता है तो गुरु इस की स्थिति और परिस्थितियों का आप स्वयं निरीक्षण करता है। वह उसकी दशा को देखता है कि वह किस में पैदा हुआ है। इसके संस्कार कैसे हैं? इसका वातावरण कैसा है? किन वस्तुओं ने इसको शान्ति दे रखी है? किस कारण से यह दुखी हुआ है? जिस तरह एक डाक्टर बीमार को देखकर इसके रोग का निदान करता है तब वह दवा बताता है, इसी तरह जो गुरु नाम दान देता है वह सब को एक ही रास्ते पर नहीं चलाता है। दुनियां भ्रम में है। हर एक व्यक्ति के दुख और हर एक की अशान्ति के कारण अलग अलग होते हैं। सब के लिये नाम दान का ढंग या विधि एक नहीं होती है।

प्राय: मैं अपने घर के उदाहरण दिया करता हूँ। मुझे और ढंग से उपदेश दिया गया। मेरे छोटे भाई को जो आठवीं कक्षा में पढ़ता था, वह दाता दयाल के पास नाम लेने के लिये गया था। उन्होंने उसको दीक्षा दी। कहा तेरे लिये– 'काम का अर्थ जीवन और जीवन का अर्थ काम' है। जब अन्तिम आयु आयेगी तू मेरी गोद में आ जायेगा। जब मेरी स्त्री दुखी होकर गई वह अशान्त थी मेरी गलत फकीरी के कारण। इसको यह आज्ञा मिली थी कि जो तुमको एक ताना दे तुम उसको १६ ताने सुनाओ चाहे वह फकीर चन्द ही क्यों न हो। यह संतों की शिक्षा है। पं० भास्कर नाथ कश्मीर के हैं। जब मैं पिछली बार कश्मीर गया था, वह मुझ





से मिले थे। इनके मकान पर सन् १९३१ ई० में दाता दयाल का सत्संग हो रहा था। जब सत्संग हो रहा था तो दाता दयाल ने जोर से कहा– अहिंसा परमो धर्म:। फिर दूसरी बार कहा हिंसा परमोधर्म; भास्कर नाथ कहता है– महाराज! अहिंसा परमोधर्म: है। दाता दयाल कहते है तुम्हारी प्रकृति और तुम्हारी परिस्थितियों के लिये हिंसा परमोधर्म: है। मरो और मारो! यह पंडित जी महाराज नाम लेने को आये हैं। मैं इनको यह बताना चाहता हूँ कि नाम दान क्या है। मैं चाहता हूँ कि इनको दो तीन सत्संग दूं ताकि लोगों को यह पता चले कि नाम दान क्या है। नाम दान है गुरु बचन। बस! सिवाय इसके और कोई नाम दान नहीं हैं। 'गुरु वाक्यम मूल मंत्रम्' यह नाम दान सबके लिये एक नहीं है। दाता दयाल कश्मीर में डेढ़ महीने रहे। भास्कर नाथ के यहाँ की स्त्रियाँ आईं। इनसे कहा चोगा उतार दो। सलवार और कमीज पहिना करो। जेवर पहनना छोड़ दो इनके बच्चे आये। दाता दयाल कहते हैं– 'गणेश बनो', दोनों हाथों से कमाओ और खाओ सूंड से भी कमाओ। जब दाता दयाल चलने लगे, लोगों ने कहा– महाराज! कुछ दिन और ठहरिये। दाता दयाल कहने लगे– तुम पर आपत्ति आने वाली है' तुम मुझ को बचाओगे या अपने को बचाओगे। यह सन् १९३१ की घटना है। वहां से दाता दयाल चले आये। बाद में वहां झगड़ा हो गया था। उन्होंने संगठन किया हुआ था, झगड़ों से बच गये। मनुष्य की अशान्ति के कई कारण होते हैं। उद्देश्य तो जीव को शान्ति देना है। कोई दुनियां के दुखों से अशान्त रहता है। कोई घरवालों से अशान्त रहता है। कोई जन्म मरण से अशान्त रहता है। किसी को धार्मिक उलझन है। ग्रन्थों में कुछ लिखा है। रामायण यह कहती है। भागवत् यह कहती है। ब्रह्म क्या होता है, पार ब्रह्म क्या होता है, सतनाम् क्या होता है, कोई इसी खोज में अशान्त रहता है। राधास्वामी मत की पुस्तकों में लिखा हुआ है:–

**'नाम रहे सतगुरु आधीना'।**

फिर नाम से क्या मिलता है? नाम से शान्ति मिलती है। यह अशान्ति कहीं कर्म करने से दूर होती है। शान्ति प्राप्त करने के तीन तरीके हैं। पेट में रोटी नहीं है। तुम कर्म करो, परिश्रम करो और कमाओ खाओ। कहीं मनुष्य की समझ बूझ ठीक नहीं रहती है। इसने गलत समझ बूझ ले रखी है। उससे अशान्त रहता है। इसको

सच्ची समझ दे दो, इसको शान्ति मिल जायेगी। कहीं मनुष्य की अपनी शक्ति नहीं होती है। न इसमें कर्म करने की शक्ति है और न बुद्धि इतनी तीक्षण है न इसमें समझ बूझ है। उससे कहा जाता है 'शरणागतम्' अर्थात शरण ले लो और भक्ति करो। इससे भी इसको शान्ति मिल जाती है। कहीं मन बड़ा चंचल है, टिकता नहीं है। उसको योग का साधन दिया जाता है। इस साधन से इसका मन ठहर जाता है। कर्म, भक्ति, योग और ज्ञान, यह सब क्या हैं? यह सब शान्ति देने के उपाय हैं अगर यह आधीन हैं किसी सतगुरू के। एक कुबेर नाथ है। इसको दाता दयाल ने कहा था कि किसी काम को करते समय यदि उस काम में झगड़ा पैदा हो जाये तो समझ लो सफल हो जायेगा।

मैं आपको बता रहा हूँ कि नाम दान क्या है। नाम दान से शान्ति मिलती है। नाम दान का एक ही ढंग सबके लिये नहीं है, नाम सत् गुरु के आधीन रहता है। कश्मीर में एक स्वामी गोविन्द कौल हैं। यह परमार्थ के लिये दाता दयाल के पास गये थे। उन्होंने कहा था कि मैं एक शर्त पर तुमको शिष्य बनाता हूँ कि तुम अपने जीवन में मुझसे परमार्थ का कोई सवाल न करना। आज मैं एक संत सतगुरु महर्षि शिवब्रत लाल जी का अनुभव बता रहा हूँ। उनसे कहा था कि तुम केवल सत्संग में बैठे रहो। मेरी ओर देखते रहो। जो मैं कहता हूँ उसकी सुनते रहो। जितनी समझ बूझ तुमको मिली है उसके अनुसार अमल करते रहो। अब वह इतनी उन्नति कर गया कि स्विटजरलैंड के लोग इसके शिष्य हैं और आश्चर्य की बात यह कि वह लोग भाषा नहीं जानते और स्वयं भी अंग्रेजी पढ़ा हुआ नहीं है।

**दीन हीन शरण में आया, कीजै आप सहाय।**
**काल का भय आज मेटो, अपने चरण लगाय।।**

काल क्या है, वह मैंने तुमको बता दिया है। समय के हालात वाक्यात् का जो प्रभाव मनुष्य की आत्मा पर और मन पर पड़ता है इससे वह अशान्त रहता है। इससे बचने के लिये यह नाम दान है। इस में सांसारिक जीवन भी आ गया और घरेलू जीवन भी आ गया। मैं उस गुरु को गुरु नहीं कहता हूँ जो अपने चेले के सांसारिक व्यवहार को ठीक नहीं कर सकता है। आजकल का गुरु मत यही है कि गुरु महाराज को चिट्ठी लिखो तो वह कहते हैं कि सिवाय परमार्थ के दुनियां की





बातें हम को न लिखा करो। क्या यह गुरु मत है? जीव का सुधार करना है। जीव को एक दुख थोड़े ही है। हमारे घर के दुख हैं, घरेलू झगड़े हैं।

मेरे जीवन में दातादयाल ने मेरी दुनिया भी संभाली है, मेरे घर के झगड़े भी संभाले हैं और मेरा परमार्थ भी संभाला है। गुरु वह है जो जिस जीव को शरण में लेता है उसका ग्रहस्थ, दीन और दुनियां सबकी संभाल करता है। वह कैसे संभालता है और कैसे शान्ति देता है? मैं अपना उदाहरण देता हूँ। मेरी शादी हो गई। मेरी दो साली थी। मेरे ताऊ का लड़का रामनारायण मुझ से १२ वर्ष बड़ा था। इसकी शादी नहीं हुई थी। मेरे पिता लोक लाज में पड़े थे। मेरे पिता ने मुझ को मजबूर किया कि तुम जाकर अपने ससुर से कहो कि वह अपनी लड़की रामनारायण को ब्याह दे। इसका दूसरा भाई था भगवानदास जो मुझ से छः महीने बड़ा था। अब मैं अपने घर से ससुराल को चला। मन में सोचा कि यदि रामनारायण के लिये कहूँगा तो वह मुझ से १२ वर्ष बड़ा है। मैं लड़की का गला कैसे काट दूँ? फिर ख्याल आया कि भगवानदास के लिये कहूँगा। मैं ससुराल पहुँचा। मैं ससुर से कहूँ तो कहेंगें साले से पूछ लो। साले से कहूँ तो कहेंगें ससुर से पूछ लो। एक कोठे पर बैठा हुआ था। दूसरा नीचे था। मैं बहुत दुखी हुआ। यह संसार दुखों की खान है। उन लोगों से बिना कहे वहां से वापिस चला आया। रास्ते में बहुत दुखी हुआ अपने कपड़े उतारे। राख सारे बदन पर मली साधु होने का ख्याल हुआ। अब साधु बनकर घर चला। जब अपने गाँव के पास पहुँचा, तब कुछ चेत हुआ। जेब में देखा रेलवे का पास घर रह गया था। फिर नहाया धोया। घर आ गया बाप ने जाते ही पूछा क्या सम्बन्ध ठीक कर आया। मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा यह सुरतो जो मेरी बड़ी लड़की दो वर्ष की थी, इसको अपने भतीजे को ब्याह दो। मैंने बहुत दुखी होकर यह बात कही थी। मैं फिर लाहौर चला आया। दातादयाल के पास आकर सारा दुखड़ा रोया। दातादयाल कहते हैं कि तेरे भाई भगवान दास का रिश्ते कराने का मैं जिम्मेदार हूँ। तुम चिन्ता मत करो। तुरन्त नौकरी पर चले जाओ। मैं बसरा बगदाद चला गया। मेरे जाने के बाद ऊधोराम मेरा साला मेरे भाई सुरेन्द्र नाथ से मिलने के लिये लाहौर आ गया। दातादयाल अन्दर थे। कहते हैं कौन है? सुरेन्द्र नाथ ने कहा कि फकीर चन्द का साला है। कहते उसे बुलाओ। उससे दातादयाल पूछते है कि कितनी बहिन हैं।

उसने कहा कि एक फकीर चन्द के घर में है। दूसरी का अभी सम्बन्ध नहीं हुआ है। अच्छा मैं हुक्म देता हूँ कि तुम दूसरी बहिन भगवान दास को दे दो। मैं भगवान दास को जानता हूँ। ऊधोराम कहता है– अच्छा महाराज ! कोई दूसरा उत्तर इससे न बन पड़ा। इसको मैं कहता हूँ गुरु। ऐसा गुरु यह सहायता किसकी करता है? उसकी जो दीन हीन है।

तुम लोग तो मेरे पास आते हो। क्या दीन हीन होकर आते हो। तुम स्वयं सोचो ! यह मार्ग है दीन हीनों के लिए। इसलिए मैं दुनियां को नाम नहीं देता हूँ। यह पंडित जी आये हैं। यह नाम लेना चाहते हैं। इनको बताना चाहता हूँ।

**मान बड़ाई देखकर, भक्ति करे संसार।**
**जब देखे कोई हीनता, औगुन धरे गंवार।।**

तुम लोगों ने समझ लिया है कि फकीर के दो हजार चेले हैं। अमरीकन भी आते रहते हैं। बस इस ख्याल से तुमने समझ लिया है कि यह गुरु हैं। गुरु बनना कोई सरल काम नहीं है। किसी के जीवन को बनाना कोई सुगम बात नहीं है। दातादयाल कहा करते थे कि यदि चार आदमियों का जीवन बन जाये तो यही गनीमत है। जो हजारों चेले हैं तुम उनका उद्धार कैसे करोगे?

**सिंध भव अगम दुस्तर, सूझे वार न पार।**
**हो दया की दृष्टि साईं, नाव है मझधार।।**

पंडित जी के लिये यह शब्द है। मन का जो समुद्र है यह महान दुखदाई है। इसका किनारा नहीं मिलता है। कैसे नहीं मिलता है? तुम अपनी बुद्धि से किसी बात को हल करना चाहते हो, तुम्हारी बुद्धि इसे हल नहीं कर सकती। बुद्धि एक ऐसी वस्तु मनुष्य के अन्दर है कि जितना इसे बढ़ाओ वह बढ़ती है। दाता दयाल कहते हैं कि मन का समुद्र बड़ा ही दुस्तर है। इसका वार पार नहीं है।

यह मेरी दशा थी। मैं शान्ति चाहता था। अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि जब तक मेरा मन साथ में रहा मन के चिन्तन करते रहने से मुझको शान्ति नहीं मिली। किसी को यदि मिली है तो मुझे इसका पता नहीं, यह शान्ति देने के लिये मुझे यह गुरु पदवी दी गई थी, क्योंकि मैं मन के चक्र में आकर मन ही का रूप रंग





बनाया करता था। मन के साथ ही चिन्तन मनन किया करता था और बाल की खाल उखेड़ा करता था। इस मन के भवसागर से पार होने के लिये ही यह गुरु पदवी दी गई थी। अब मैं पार कैसे हुआ व मुझे क्या मिला? इस गुरु पद पर आकर मुझे शान्ति मिली। केवल इस एक ख्याल ने कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता हूँ और मेरा रूप लोगों के अन्तर प्रगट होता है, मरते समय इनको ले जाता है, इनकी दवायें बताता है आदि आदि, ने मुझको इस भवसागर से निकलने के लिये विवश कर दिया। मुझे यह निश्चय हो गया है कि मैं तो होता नहीं हूँ, यह हर एक जीव का अपना ही अनुभव है। उसके मन का संकल्प है। जिसने अच्छा संकल्प किया है वह अच्छा हो गया है और जिसने बुरा संकल्प किया है वह बुरा हो गया है। इसलिये वेदमार्ग में 'शिव संकल्पमस्तु' है इस दुनियां में जीने के लिये। तुम लोग सत्संग में आते हो। तुम लोगों को गुरु मत का कुछ पता नहीं है। मैं निर्भय होकर कहता हूँ कि आजकल के गुरुओं ने गृहस्थियों की आंखों में मिट्टी डालकर इनका धन लूटा है। अभी मैं अमीन गाँव में गया था जो कुरुक्षेत्र के जिले में है। वहां का एक टिकट कलैक्टर है जो आया हुआ है। वह सात आठ वर्ष से मेरे पीछे – पीछे फिरता रहता है। मैंने इसका कारण पूछा तो वह कहता है कि बाबा जी ! मैं टिकट कलैक्टर था। बाप मेरा चल बसा। मेरी जमीन थी। मैंने नौकरी छोड़ दी और खेत में हल चलाता रहा। गरीबी अधिक थी। मैंने स्वप्न में देखा कि रेलगाड़ी जा रही है। उसमें आप गार्ड थे। आपने गाड़ी खड़ी कर दी। आप मुझसे कहते हैं– बैठ जा इस गाड़ी में '। मैंने उससे पूछा। तुमको कैसे पता चला कि मैं ही गार्ड था। अब जब मैंने आपको देखा तब मुझे पता चला। वह बहुत दुखी और अशान्त था। एक साधु इसके पास भीख मांगने के लिये आया। उसने कहा कुछ दे दो। वह कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं है। मैं गरीब आदमी हूँ। उस साधु ने कहा कि यदि तेरे पास कुछ नहीं है तो मेरे पास से ही कुछ ले लो इसने सारी दुनियाँ (मासिक पत्र) इसको दे दिया। उसमें दातादयाल जी के लेख थे। यह पढ़कर आकर्षित हुआ और पुस्तकें मँगवाने को नन्दूसिंह जी को लिखा। नन्दूसिंह जी ने उसको मेरा नाम बता दिया। जब मैंने आपको देखा तो आप वही गार्ड थे। अब मैं जानता हूँ कि मैं गार्ड बन कर उसके स्वप्न में नहीं गया था। फिर वह कौन था। मनुष्य का अपना ही मन। जिस

जिससे उसका गहरा सम्बन्ध होता है, वह वहां जन्म लेता है और उसके साथ सम्बन्धित हो जाता है। कोई पुत्र बनकर सम्बन्धित हो जाता है, कोई भाई बनकर या कुछ और। कई आदमी ऐसे होते हैं जिनके पिछले जन्मों के कर्म होते हैं और वह सम्बन्धित हो जाते हैं। वह केवल विचार के कारण एक दूसरे के सम्बंधी हो जाते हैं। जैसे दाता दयाल मुझसे कहते थे कि मेरा तुम्हारा सम्बन्ध ऐसा मालूम होता है कि पिछले जन्म का सम्बन्ध है।

यह पंडित जी मुझसे नाम लेने आये हैं। नाम क्या है? तुम लाख समाधि लगाते रहो, अपने अन्तर, आनन्द अवश्य मिलेगा, शायद सिद्धि शक्ति भी मिल जाये, मगर तुमको शान्ति नहीं मिलेगी। राधास्वामी दयाल का कथन है:–

**बिन सतगुरु जो शब्द में पचते, वह भी मूरख जान।।**

इसलिये मैंने आपकी कहा था कि १५ नवम्बर ६९ई० को आ जाना। चार पांच दिन मेरा सत्संग सुन लेना ताकि तुम्हारी बुद्धि निश्ययात्मक हो जाये। फिर यदि तुम साधन अभ्यास करोगे तो तुमको शान्ति मिल सकती है। यदि तुम केवल नाम ही के पीछे पड़े रहोगे तो यह भव का जो समुद्र है, इससे गुरु तुमको कैसे तारेगा? वह तुमको सत्संग कराकर और सच्ची समझ बूझ देकर सच्चा विवेक देगा ताकि तुम अपने मन की कल्पनाओं में गलत ढंग से न फँसे रहो। तो भव सिन्धु से तरने का एक मात्र इलाज यह सत्संग ही है। सत्संग मुख्य है और नाम गौण सहायक है। इस संसार में सत्संग की भारी महिमा है। स्वामी जी ने लिखा है–

**सब ही आये सतगुरु आगे। दर्श न पकड़ा वचन न लागे।।**

कहो इस सत्संग से क्या फल पाया। वक्त गया और जन्म गँवाया।

सत्संग और नाम दोनों साथ साथ चलते हैं। इसलिये मैंने इनको कहा था कि १५ तारीख को आ जाना।

**सिध भव अति दुस्तर, सूझे वार न पार।**
**हो दया की दृष्टि साईं, नाव है मँझधार।।**

फिर गुरु की दया क्या होती है! अज्ञानियों तथा मूर्खों ने यह समझ हुआ है कि गुरु फूंक मार देता है। गुरु की दया यही है कि वह जीवों की बुद्धि को निश्चयात्मक बना देता है। इसके सिवाय ऐ पंडितजी! तुमको मुझसे और कोई





आशा नहीं करनी चाहिये अन्यथा तुम भूल में पड़े रहोगे। यदि कोई व्यक्ति इससे अधिक मुझसे या किसी गुरु से आशा करता है तो वह अज्ञान में है और भूल में पड़ा है।

दुनिया ने गुरु मत को समझा नहीं है। यह गुरु गुरु करना ही जानते हैं और हम गुरु लोगों ने रोचक और भयानक बातें कह कह कर पाखंड का जाल बिछा दिया है, और तुम लोगों को अपने स्वार्थ के लिये जानवर बनाया हुआ है। मैं अपनी स्थिति को साफ करना चाहता हूँ ताकि मेरी आत्मा पर गुरु बनने का कोई पाप न रहे। कोई धोखा न रहे। दातादयाल जी की वाणी है–

**जब दया गुरु की हुई, चरणों की भक्ति मिल गई।**
**सब निबलता मिट गई, निश्चय की शक्ति मिल गई।।**
**आ गये सत्संग में, और संग सत का हो गया।**
**दुर्मति जाती रही, जब गुरु के मत का हो गया।।**
**प्रेम का पियाला पिया, पीते ही मतवाला बना।**
**मन की सुधि बुधि खो गई, भोला बना बाला बना।।**

अब तुम सोचो! गुरु के चरणों को भक्ति मिल गई। मन को सुधि बुधि समाप्त हो गई। जीव भोला बन गया और बाला बन गया। क्या इन चरणों से प्रेम करने से तुम्हारा मन निर्मल हो सकता है? यह संसार भूला हुआ है। राधास्वामी मत के अनुसार गुरु के चरण प्रकाश हैं। यही बात राय सालिगराम सहिब ने अपनी 'प्रेम बाणी' नामी पुस्तक में लिखी है कि सतगुरु केवल शब्द स्वरूपी राधास्वामी दयाल हैं अर्थात शब्द ब्रह्म है और इनके चरण प्रकाश हैं। बाहर का गुरु जीव की परिस्थिति और प्रकृति को देख कर यदि वह अधिकारी है तो उसकी सुरत को उसके अन्तर जो प्रकाश है और शब्द है (पारब्रह्म और शब्दब्रह्म है) इसकी ओर ले जाता है।

ऐ कुरुक्षेत्र के पंडितजी! मैं कोई बात ऐसी नहीं कहता जो तुम्हारे शास्त्रों के विरुद्ध हो। तुम्हारा गायत्री मंत्र प्राणायाम मंत्र यही कहता है कि सावित्री के दर्शन करो। तुम लोग ब्राह्मण होकर गायत्री मंत्र की केवल रट लगाते रहते हो

केवल अपनी जिभ्या से। तुम अपना सही मार्ग भूल गये हो और कर्मकाण्ड में बुरी तरह फँस गये हो। सावित्री जो तुम्हारे अन्तर में है यह असली और सच्चे गुरु के चरण हैं। जब तक किसी की सुरत अपने अन्तर मन के विकारों को छोड़ कर प्रकाश में नहीं जायेगी इसमें भोलापन और बालापन नहीं आयेगा। मैं वही शिक्षा देता हूँ जो सनातन धर्म अब तक दे गया है। राधास्वामी मत की शिक्षा वही है जो सनातन धर्म की है। केवल वाणी या वर्णनशैली का अन्तर है। इसलिये मैंने इनसे चार पांच दिन पहले आने और तीन चार सत्संग सुनने के लिये कहा था। एक आदमी कोई काम करता है। यदि उसको यह निश्चय नहीं है कि वह जो काम करता हैं उससे लाभ होगा तो उस काम के करने से लाभ क्या हो सकता है। इसलिये सत्संग में बुद्धि निश्चयात्मक कराई जाती है।

**दीन हीन शरण में आया, कीजै आप सहाय।**
**काल का भय आज मेटो, अपने चरण लगाय।।**

'अपने चरण लगाय' – यह बाहरी चरण मैंने भी पकड़े थे। उस समय मेरा काल का भय नहीं गया था। जब तक किसी की सुरत अपने अन्तर में ज्योतिस्वरूप ओउम् (त्रिकुटी) पर नहीं जाती, उसका मन छलांग मारने से रुक नहीं सकता। इसलिये ज्योति या प्रकाश का साधन करना बहुत आवश्यक है मगर यह उन लोगों के लिये है जो केवल इस भवसागर से पार होना चाहते हैं। जो दुनियादार लोग हैं और दुनियां की इच्छाओं की पूर्ति चाहते हैं उनके लिये सबल ब्रह्म की शिक्षा है। सबल ब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म, पारब्रह्म और शब्दब्रह्म ये चार हैं। राधास्वामी मत में सबल ब्रह्म को सहसदल कंवल और त्रिकुटी कहते हैं। शुद्ध ब्रह्म को सुन्न (शून्य) और महासुन्न कहते हैं। पारब्रह्म को सोहंग गति और सतलोक कहते हैं। शब्द ब्रह्म को सत, अलख, अगम कहते हैं। मुसलमानों में नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत, हाहूत और हूतुलहुत अर्थात सतलोक तक है।

मैंने जीवों को वाणीजाल से निकालने की कोशिश की है। तुम लोग शब्दों के जाल में मत फँसो। आज कल मानव जाति भिन्न–भिन्न मतों और पंथों में बँट गई है। इस दशा को देख कर मैंने ऐसा कदम बढ़ाया है। दुनियां चाहे मुझे अहंकारी कहले। मैं इस सत से परे जो गति है, जहां नाम नहीं रहता है, अगम लोक, वहां से





इस फकीर के चोले में आया हुआ हूँ। कुछ तो मेरे अपने ही कर्म है, मैं इनको काटने को आया हूँ और कुछ संसार का सच्चा और असली रास्ता क्या है, उसे बताने आया हूँ। पंडितजी ! यदि तुम अपने घर जाना चाहते हो तो आदेश है–

**कछुक दिना कीजै सत्संगा।**
**होय मान मद मोहहिं भंगा।।**

सत्संग के पश्चात अपने अन्तर में जाने की विधि बता दूँगा। तुम साधन अभ्यास करते रहना। तुम्हारी वृद्धावस्था भी आई हुई है। अब अ, ई, पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। तुम सीधे ही प्रकाश को पकड़ो। मन बहुत चंचल है। वह ठहरता नहीं है। उसको किसी वर्णात्मक नाम से सुमिरन देना पड़ता है और गुरु का सत्संग करना पड़ता है। मुझको दातादयाल से वर्णात्मक नाम राधास्वामी मिला था। मुझ से यदि कोई पूछे कि वर्णात्मक नाम क्या है तो मैं उससे कहूंगा कि वर्णात्मक नाम राधास्वामी नाम क्या है तो मैं उससे कहूंगा कि वर्णात्मक नाम राधास्वामी का प्रयोग करो। यदि तुमको इस शब्द के ग्रहण करने में आपत्ति न हो तो बेहतर है तुम इसका सुमिरन किया करो। यदि तुमको इस शब्द के ग्रहण करने में हुज्जत हो तो तुम जा सकते हो। मैं गुरु के पंथ की प्रणाली को तोड़ना नहीं चाहता हूँ , रहा असली राधास्वामी नाम वह तो चौथे पद में रहता है, जहां सुरत शब्द को सुनती हुई अशब्द गति में चली जाती है। इस अवस्था का नाम है असली नाम मगर मन को एकाग्र करने के लिये यह नाम है। तुम यह नाम जपो। मैं बात बिल्कुल साफ–साफ कहता हूँ, कोई लगाव लपेट नहीं रखता हूँ।

बात आपको मैंने समझा दी है, रहस्य आपको बता दिया है। यदि आप मुझ से दीक्षित न भी हों तो मेरी बात को समझ जाओ। गायत्री मंत्र के अजपाजाप से तुम अपने अन्तर में प्रकाश और शब्द को पकड़ लो। तब भी तुम्हारा काम हो जायेगा। आपकी मंजिल पूरी हो जायेगी मगर आप में अपने अहंकार का जो अवगुन है, यह नहीं जायेगा।

दातादयाल (महर्षि) बड़े ही स्वतंत्र विचार वाले थे। गोरखपुर में उनके शिष्य मुख्तार साहब मिले थे। वह कहते थे कि दातादयाल ने उनसे कहा था कि मैं राधास्वामी मत का आचार्य हूँ। मैं राधास्वामी मत के साथ बँधा हुआ हूँ। तुम

स्वतन्त्र हो। उन्होंने अपने शिष्य को स्वतंत्र कर दिया है। अभिप्राय तो अन्तर में प्रकाश को देखने और शब्द के सुनने से है। यह जो वर्णात्मक शब्द है, हम लोग इनके पीछे झगड़ा करते हैं।

**सिध गति अति दुस्तर, सूझे वार न पार।**
**हो दयाकी दृष्टि साईं, नाव है मंझधार।।**

मेरी नाव मंझधार में थी। मुझ पर दयादृष्टि क्या हुई? मुझ पर उन्होंने दयादृष्टि कर दी जिसको मैं समझता नहीं था। अब तुम लोगों के द्वारा मुझको यह निश्चय हो गया कि मैं जिन्दा तुम्हारे अन्तर में नहीं जाता हूँ। यह तुम्हारे ही मन की कल्पना है जो तुम अपना संसार बनाते हो। मैं भी डूबा कल्पना में अपना संसार बनाता था और इस भव सिन्ध में डूबा रहता था। कभी खुशाी कभी शोक, कभी उत्साह कभी प्रेम के और भक्ति के राग गाने और कभी रोने धोने से काम था। यह मेरा रोना धोना और प्रेम का गाना क्या था? मन की कल्पना थी।

ऐ सत्संगियों! दातादयाल इस समय यहां नहीं हैं। मैं प्राय: कह देता हूँ कि वह ज्योति समा गये। मुझे पता नहीं वह कहां गये। मैं अब आप लोगों को गुरु मानता हूँ। आप लोगों की बदौलत मैं इस भवसिन्ध से तरने के योग्य हो गया। आज तक महात्माओं ने इस तरह सच्चाई प्रगट नहीं की है। सबने पर्दा रखा है। उस समय पर्दे की आवश्यकता थी। कबीर साहब ने भी पर्दा रखा था और धर्मदास को चेतावनी दी थी–

**धर्मदास तोहि लाख दुहाई। सार भेद बाहर नहिं जाई।।**

राधास्वामी दयाल ने भी बात को पर्दे में रखा। उस समय पर्दे की आवश्यकता थी।

**संत बिना कोई भेद न जाने, वह तोहि कहें अलग में।।**

मैंने इस पर्दे को उठा दिया है। क्यों उठाया है? एक तो तुम लोग लुट न जाओ। यह बड़े–बड़े डेरे, मंदिर और सम्प्रदाय किस तरह बने हैं? इन्हीं बातों से कि अन्त समय राम आ जाते हैं और ले जाते है। सुनो! पहिली स्त्री जब मरी तो उसने तीन दिन पहिले घर के सब लोगों से कहा कि मेरे चेहरे से पर्दा उठा दो।





आज से तीसरे दिन मैं चली जाऊंगी। पं० रामनारायण मेरे भाई रामायण पढ़ते थे। मरने से १५ मिनट पहिले वह कहती है कि अब तुम रामायण पढ़ना बन्द करो। रामचन्द्रजी महाराज आ गये हैं। सीता के साथ सिंहासन पर बैठे हुये हैं। लक्ष्मण भी साथ में हैं और हनुमान जी भी साथ हैं। मेरे लिये डोली आ गई है। अब मैं जा रही हूँ। इसने सबको राम राम कहा और प्राण छोड़ दिये। वहां उसको रामचन्द्रजी लेने के लिये आये हुये थे। आजकल जो सत्संगी है उनको बाबा सावनसिंह जी आकर ले जाते हैं। जो मुझसे प्रेम करते हैं, उनको मेरा रूप लेने के लिये आ जाता है। लोग मरते हैं। वह कहते हैं कि बाबा आ गया। हवाई जहाज लेकर आया है। मैं तो जाता नहीं हूँ। मुझे पता तक नहीं होता कि कौन मर रहा है। इटारसी से दो महिने हुये एक चिट्ठी आई थी। तुलसीराम एक लड़का है। इसका बाप मर गया। वह लिखता है तीन घंटे पहिले वह मरने वाला, कहता कि बाबा फकीर हवाई जहाज लेकर आया है। इसका नं० ३५६१० है। मैं तो गया नहीं था। क्या इन बातों से तुम लुट नहीं जाते हो। तुम लोगों ने रुपया देकर इन गुरुओं की गद्दियों को बनवा दिया है। मंदिरों में, गुरुद्वारों आदि में इस अज्ञान से तुम्हारी गाढ़ी कमाई लुट रही है। तब ही तो मैं कह रहा हूँ मेरे जिम्मे ड्यूटी है–

**तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।**
**दुखी जीव को अंग लगाकर, लेजा गुरु के देशा।।**
**तीन ताप से जीव दुखी है, निबल अबल अज्ञानी।**
**तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी।।**

मेरा जो वचन है यही नाम दान हैं। तुम भोलेभाले गृहस्थी लोग हो। सोचते नहीं हो। मैं उठा, मैंने तुमको दस बातें बताकर अपनी गद्दी का चेला बना लिया। दूसरा उठा। उसने दस बातें कहकर तुमको अपनी गद्दी का चेला बना लिया। फिर हर साल तुम्हारे घरों में गुरु महाराज फेरा मारते हैं ताकि तुम्हारे पास से दसवंश ले जायें। यह आजकल का गुरु मत है। जब चेला बना लिया जाता है तो दसवंश ले लेते हैं। मैंने इस अज्ञान की जड़ काटी है।

खुशी से जो तुम्हारी इच्छा हो किसी दुखी की सहायता करो। यदि दोगे नहीं तो लोगे कहां से। तुम दान नहीं करते तो कहां से लोगे। पंडित जी! तुम आये

हो मेरे पास से नाम दान लेने के लिये। धर्मदास भी कबीर साहब के पास नाम दान लेने गया था। यह नाम दान उसको मिलता है जो संसार को छोड़ना चाहता है। कबीर साहब धर्मदास से कहते है:–

**चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो।**
**यह संसार काल का खाजा, कर्म का जाल पसारा हो।।**
**चौदह खंड जाके मुख, सब का करत अहारा हो।**
**जार बार कोयला कर डारत, फिर–फिर ले अवतारा हो।।**
**ब्रह्मा विष्णु शिव तनधर आये और को कौन विचारा हो।**
**सुर नर मुनि सब छल छल मारे, चौरासी में डारा हो।।**
**मध्यअकाश आप जहँ बैठे, जोती शब्द उजारा हो।।**

मैं नाम दान पर्दे में नहीं देता हूँ जिस तरह आजकल नाम दिया जाता है। मैं पब्लिक में नाम देता हूँ। बुढ़ापा आ गया है। अपनी दुनियाँ तुमने देख ली। अब अपने जीवन का उद्धार चाहते हो, इसलिये आये हो। इसका तरीका तुमको दिया है कि गुरु के चरण प्रकाश हैं। इन बाहरी चरणों को पकड़ने से तुम्हारा बेड़ा पार नहीं होगा। अपने अन्तर में प्रकाश में चले जाओ। यही गायत्री मंत्र है। मन को एकाग्र करने के लिये मैं शब्द राधास्वामी कहूँगा। तुम्हारा जी चाहे इसको स्वीकार करो या न करो। आज मैं निर्णय कर देता हूँ कि मैं पुरानी प्रणाली को तोड़ना नहीं चाहता मगर असली नाम प्रकाश और शब्द है। पारब्रह्म और शब्दब्रह्म है। संसार में किसको छोड़ना है? वह विचार जो तुम्हारे अन्दर तरह–तरह उठते रहते हैं। यह विचार तब ही जायेंगे जब तुम्हारी सुरत शब्द और प्रकाश में लगेगी। यही गायत्री मंत्र का सारांश भी है। यही गरुड़ पुराण कहता है कि जब तक अन्त समय किसी की सुरत पारब्रह्म और शब्द ब्रह्म से आगे नहीं जायेगी, आवागवन समाप्त न होगा। यह मार्ग तो है सतों का।

**संत सरूप शब्द जहां फूले, हंसा करत व्यौहारा हो।**
**कोटिन सूर चन्द छवि झलके, एक एक रोम उजियारा हो।।**

वह है ब्रह्म और शब्द ब्रह्म का देश। इसका प्रतिबिम्ब तुम्हारे अन्तर में रहता है। तुम ऐसा साधन किया करो। कुछ दिन बाहर के गुरु का सत्संग करो। गुरु





इसलिये धारण किया जाता है कि मनुष्य का मैंपना या अहंकार टूट जाये। दुनियां में एक स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँ पर मनुष्य अपना सिर झुकाये। मनुष्य में खुदी या मैंपना आ जाता है या अंहकार आ जाता है। वह किसी सतपुरुष के सत्संग करने से दूर हो जाता है। असली वस्तु तुम्हारे अपने अन्तर में है।

**देही पार एक नगर बंसत है, बरसत अमृत धारा हो।**
**कहें कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो।।**

मैंने पहिले कहा था कि मुझे क्या मिला? अब मैं वहां पहुँचा हूँ जहां नाम नहीं है। नाम का सम्बन्ध शब्द और प्रकाश ही तक है। यही बात कबीर साहब भी कहते हैं। शब्द ब्रह्म और पार ब्रह्म के आगे–

**सत सरूप शब्द जहां फूले, हंसा करत व्यौहारा हो।**
**कोटिन सूर चन्द छवि झलके, इक इक रोम उजियारा हो।**

तुम्हारा असली घर इससे आगे है।

**वही पार इक नजर बसंत है बरमत अमृत धारा हो।**
**कहें कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो।**

मैंने सत्संग शुरू किया था कि नाम क्या है? वह किसको मिलता है? नाम का परिणाम क्या होता है? परम शान्ति! शब्दब्रह्म और पारब्रह्म से आगे जो हमारा देश है, वहां तक तुम्हारी बुद्धि नहीं जा सकती है। फिर इसके लिये क्या करना चाहिये? पहिले दीन और हीन बनो। यदि परमार्थ चाहते हो तो धन, स्त्री और भूमि को भाग्य के ऊपर छोड़ दो। जब तक इनकी इच्छा है तब तक परमार्थ नहीं मिल सकता। यदि कोई गुरु सामर्थ्यवान दाता मिल जाये तो धन, स्त्री और भूमि से तुमको निकाल ले जायेगा। कर्म योग से, भक्ति योग से और ज्ञान योग से वह तुम्हारी सहायता करेगा। यदि कोई सामर्थ्यवान दाता गुरु मिल जाये, जिस तरह मुझको दातादयाल मिले थे तो तुम्हारी दुनिया भी बन जायेगी और दीन भी बन जायेगा और अन्त में तुम आवागवन से निकल जाओगे। मैं दुनियां में जितना सुखी हूँ शायद कोई सुखी होगा। इस समय मुझे किसी तरह का कोई कष्ट नहीं है। शरीर मेरा ठीक है स्वस्थ है। आयु ८३ वर्ष की हो गई है। नाम की प्राप्ति भी मुझे हो गई है।

# द्वितीय सत्संग

**( मानवता मंदिर होशियारपुर १८-११-६९ )**

**जीवन सुधार उपाय**

**शब्द**

**मानुष जन्म सुधार तु मेरी सुरत सहेली।**
**पिया की शरण में जल्दी आ जा, चित घर प्रेम पियार तू०॥**
**मांग भरा भक्ति सिंदूर से, माँग परम सिंगार तू०॥**
**क्षमा की चूनर दया की साड़ी, पहिर के चल दरवर तू॥**
**पिया के महल का सुख आनन्द ले, डारि जगत सिर छार तू॥**
**राधास्वामी सांचे प्रीतम, चरण कमल हिये धार तू॥**

इस शब्द में मनुष्य जीवन सुधारने का ख्याल दिया गया है और इस सुधारने के लिये यही नाम दान है, जो मुझको मिला था सन् १९०५ में। उस समय मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा।

इस नाम ने जहाँ मुझको पहुँचाया है वह, वह स्थान है जहां धर्म, पंथ नहीं रहते हैं, जहाँ गुरु चेला नहीं रहते, स्वामी सवेक नहीं रहते, कर्म धर्म नहीं रहते। हम सब लोग आदि अवस्था से आये हुये हैं। इसका प्रमाण राधास्वामी दयाल के जेठ महिने के शब्द हैं और कबीर साहब का आदि धाम का शब्द है।

पंडित जी महाराज कुरुक्षेत्र से नाम लेने के लिये मेरे पास आये हैं। नाम क्या है? मैं विद्वान नहीं हूँ। सीधी-सादी बात जानता हूँ। जब कोई आदमी तुम्हारे पास आता है। तुम उससे पूछते हो कि तुम कौन हो। फिर वह अपना नाम बताता है। इसी प्रकार से मैं दुनियां में किसी खब्त को लेकर आया था। मुझे पता लगा है कि मैं कौन हूँ। तो फिर नाम क्या है? किसी को यह बता देना कि तू कौन है और कहाँ से आया है। तुम इसी दुनियां के जीवन में देखो। माँ एक बच्चा पैदा करके किसी को दे देती है। यदि उसको यह न बताये कि तू किस कुल में और किस घर में पैदा हुआ है तो उसको क्या पता लगेगा। अब तुम कहते हो कि हमारा बाप अमुक है, हमारी मां अमुक है। हमारे पास इसका कोई प्रमाण नहीं है। जब हम पैदा हुये थे हमें कुछ





कोई चेत तो था नहीं। किसने बताया कि तुम अमुक कुल में पैदा हुये? लोगों ने ही तो यह ख्याल दिया है कि फकीरचन्द! तेरा बाप मस्तराम है। तू पार्वती के घर में पैदा हुआ है। अमुक गाँव में पैदा हुआ है। मैंने इन सब बातों को सुना। मुझे विश्वास हो गया। जब मैं उस गांव में गया तब मैंने मां के प्रेम को देखा। पिता के सम्बन्ध को देखा। तब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया। ऐसे ही यह नाम है। जीव को पता नहीं है कि वह कौन है और कहां से आया है, किसने उसको पैदा किया है। यह साधु सन्त लोग है या हम गुरु लोग हैं जो जीव को युक्ति और उपाय बताते है हैं कि तू इस तरह चला कर। तुझ को पता लग जायेगा कि तू कहाँ से आया हुआ है और तेरा आदि क्या है और तू क्यों आया है।

जो युक्ति और उपाय तुमको बताया गया है इसी को कहते हैं नाम दान मगर लोग उस पर चलते नहीं है। केवल इसी वर्णात्मक नाम को रटते रहते हैं जैसे यह पंडित जी ब्राह्मण है। मेरे पास नाम दान के लिये आये हैं। अपने घर जाने के लिये ऋषियों ने गायत्री मंत्र या प्राणायाम मंत्र ब्राह्मणों को बतलाया है। मंत्र का अर्थ तो है राय, सम्मति या विधि। जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति से परे जो सावित्री( सूर्य )है उसके दर्शन करना। वह तुम्हारी बुद्धि का प्रेरक होगा मगर इन ब्राह्मणों ने सावित्री को अपने अन्दर प्रगट नहीं किया। वह केवल मंत्र को ही रटते रहते हैं। ऐसे ही प्राणायाम मन्त्र है- ओ३म् भूर्भुवः स्वः महाः जनःतपः सत्यम। इससे परे जो सावित्री है इसके दर्शन किया करो मगर इसके दर्शन कोई नहीं करता। केवल नाक बन्द करके साँस चढ़ाते हैं। इसी तरह संत मत वाले या राधास्वामी मत वाले गलती खा गये हैं। इन्होंने पांच नाम को ही याद कर लिया है। सहस्त्रार, ओंकार, रांरकार, सोंहकार, सत्याकार इन शब्दों का ही इन्होंने सुमिरन किया है मगर वह इनके भाव को नहीं जानते हैं। तो नाम दान क्या है?

**मानस जन्म सुधार तू, मेरी सुरत सयानी।**

तुम तो इस मानव चोले में आये हो, तुम इस जन्म को सुधार लो। जन्म सुधारने का क्या अर्थ है? यही कि तुमको सुख मिले। खाने को रोटी मिले। पहिनने को कपड़ा, रहने को मकान, करने को काम मिले और तुम इस जन्म से या आवागमन से बच जाओ। यही सुधार है। जो लोग यह कहते फिरते हैं कि संसार

को छोड़ दो, यह दीवाने लोग हैं। जीवन की आवश्यकताओं का पूर्ति के लिये दुनियाँ में सामर्थ्यवान रहने की आवश्यकता है ताकि दुनियां में तुमको मानसिक शारीरिक शान्ति मिले, दुनियां में आनन्द मिले और अन्त में अपने घर जाने के लिये युक्ति मिले। इसी युक्ति का नाम है नाम दान। मुझे इससे अपने घर का पता लग गया है और इस जीवन में आने का ध्येय भी मालुम हो गया है। सब सुखी रहने को यहां आते है। यहाँ पर आनन्द का जीवन काटकर अपने घर जाने के लिये यहां आये है। जीवन का मतलब ही आनन्द सुख और शान्ति है।

पाँच नाम में पहिला नाम है सहस्त्रार। यह संत मत की शिक्षा है। हिन्दुओं में भी पहिला स्थान ज्योति दर्शन का है। भुर्भव: स्व:, तत्सवितुर वरेण्यम् सहस्त्रार के स्थान पर में क्या होता है? ज्योति जलती है। घंटा शंख बजता है। यही राधास्वामी मत की शिक्षा है। इस स्थान पर साधन करने से हमारे मन की बुद्धि एकाग्र होती है। अन्तर के शब्द को सुनने से या अन्तर की ज्योति के दर्शन करने से तुम में शक्ति बढ़ जायेगी और जो कुछ तुम इच्छा करोगे वह इच्छा पूरी होगी। ब्राह्मण लोग गायत्री मंत्र को सिद्ध किया करते थे। वह जंगल में बैठे हुए भी जो वस्तु चाहते थे प्राप्त कर लेते थे। जिस समय भरत सेना लेकर राम से मिलने के लिये गये थे, भारद्वाज ऋषि ने अपनी संकल्प शक्ति से भरत जी की कुल सेना को भोजन खिलाया था। यह नाम प्रथम श्रेणी का है।

मैं नाम नहीं देता हूँ। मैंने चेले नहीं बनाये हैं। क्यों? मेरे जीवन में सन् १९४२ ई० में एक घटना हुई। एक स्त्री जबलपुर से अपने तीन बच्चों और अपने पति को लेकर होशियारपुर होती हुई मेरे पास फिरोजपुर पहुँची। वह अपने अन्तर में ज्योति स्वरूप का ध्यान करती थी। लाल रंग के सूर्य में मेरे रूप का ध्यान करती थी। ओ३म् या मृदंग का शब्द अन्तर में सुना करती थी। इसने मुझ से कहा कि महाराज, आप मेरे पति से कह दो कि वह बच्चों की संभाल किया करें। यह मुझे तंग करते है। मुझे अभ्यास नहीं करने देते। मैंने उससे पूछा कि तेरी सास है। बोली नहीं। मां है? वह कहती है नहीं। इसका पति महकमा तार में नौकर था। सुबह ८ बजे से रात के ८ बजे तक काम करता था। वह दूसरे स्थान पर अभ्यास करती थी। मुझे यह अनुभव है कि इस स्थान या श्रेणी पर जो अभ्यास करने वाला होता है,





इसके अन्त: करण की जो सच्ची इच्छा होती है वह पूरी हो जाती है। यह नाम जपने का प्रभाव है। जो नाम जपता रहता है उसकी मनोकामनायें पूरी हो जाती हैं। मैंने इस अनुभव के आधार पर बलीराम हकीम से यह कहा था कि इस स्त्री के तीनों बच्चों मर जायेंगे। यह उस समय का मेरा अपना अनुभव था। जब वह चलने लगी और मत्था टेका तो मैंने उससे कहा कि तूने दाता दयाल से जो मांगा है वह तुझको मिल जायगा। नौ महीने के अन्दर, उसके तीनों बच्चे मर गये। मैं इस घटना से कांप गया। मैंने कहा कि फकीर चन्द! यदि सब लोगों को नाम देता रहेगा तो इस के साधन से इनकी मनोकामनायें पूरी होती रहेगी। बुरी भी पूरी होंगी और अच्छी भी पूरी होंगी। तो तू नाम दान देकर महापापी बनेगा। इस लिये नाम दान केवल अधिकारियों को ही मिलना चाहिये। फिर मैंने किसी को नाम नहीं दिया है। मैंने यह रहस्य किसी को नहीं बतलाया क्योंकि राधास्वामी मत में या संतों के मार्ग में एक ऐसा ख्याल दिया गया है कि तुम जितनों को नाम दिलाओगे उतना ही तुम्हारा भला और उपकार होगा। मैं तो केवल सत्संग करा देता हूँ। जीवों को जीवन व्यतीत करने का रहस्य बताता हूँ। अपने विचारों और आशाओं और इच्छाओं को ठीक रखना है। इस मन को शुद्ध करने के लिये कोई युक्ति या उपाय बता दिया करता हूँ मगर नाम नहीं देता हूँ। सात वर्ष हुये जब आगरे गया था। वहां से हुजूर महाराज राय सालिग राम साहब जो दातादयाल (महर्षि शिव) के सतगुरु थे, उनकी 'प्रेम वाणी' नामी पुस्तक ले आया था। इसमें उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि जिनके मन गंदे है, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर और घृणा जिनके मन में भरा रहता है, जो लोग गंदे विचारों को रोक नहीं सकते हैं अथवा रोकना नहीं चाहते हैं उनको शब्द योग का अभ्यास कदापि नहीं करना चाहिये अथवा उनकी अत्यन्त हानि होगी। यह बात हिन्दू ग्रंथों में लिखी है कि गायत्री मंत्र आदि शूद्र सुन ले तो इसके कान में ठेस लगा दो। शूद्र वह नहीं है जो शूद्र घर में जन्मा है किन्तु शूद्र वह है जिसका मन मलिन है, जो मन में ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर और घृणा रखता है। मैं बड़ा हौसला करके कहता हूँ कि यह गद्दियों वाले पब्लिक को नाम देते हैं। नाम केवल अधिकारियों को मिलना चाहिये। जीव केवल सत्संग से अधिकारी बनता है। इसलिये सबसे पहले इनको यथेष्ठ समय तक सत्संग कराने की आवश्यकता है ताकि उनको यह पता लग

जाय कि सत वस्तु क्या है। पता नहीं पिछले जन्म का सम्बन्ध इन पंडित जी का होगा। नहीं तो मैं नाम किसी को नहीं देता। मैं केवल सत्संग करा दिया करता हूँ। जो मेरी बात को समझ लेता होगा, उस समझ का नाम ही नाम दान है। यह मेरे वचनों का सार है। इस सार का नाम ही नाम दान है। फिर वह व्यक्ति उसी उपदेश के अनुसार आचरण करेगा। अब मुझे गुरु बनाने और चेले बनाने की इच्छा नहीं रही है।

पहिला स्थान या श्रेणी सहस्त्रार की है। इसमें जो अभ्यास कर लेता है। उसकी वासनायें पूरी हो जाती है। यहां हर अभ्यासी को अपने अन्तर ज्योति के दर्शन होते है। जिनको आगे जाने की आवश्यकता होती है तो वह आगे के स्थानों पर जाते है। प्राचीन समय में गुरु लोग एक श्रेणी या स्थान का मंत्र या उपदेश किसी को दे देते थे। वह उसकी कमाई रहता था। अब फिर वह कभी गुरु के पास जाता था तो गुरु उस के जीवन का निरीक्षण करते थे। यदि उचित समझते थे तो उसको आगे दूसरे स्थान का भेद या विधि बता देते थे। अब इस मौजूदा संत मत में 'आ से लेकर ज्ञ' तक सब कुछ एक ही बार में बता देते हैं। सहस्त्रार, ओंकार, सोहंकार, सत्याकार की न इन लोगों को समझ आती है और न वह वहाँ तक पहुंचते ही हैं। फिर हम गुरु लोगों ने जीवों को अपने पीछे लगाये रखने और लूटने का एक और ही ढंग ग्रहण कर लिया है। वह कहते हैं कि उस समय सतगुरु आयेंगे और साथ ले जायेंगें जीव बेचारा इस गलत अज्ञान में आकर न तो अपना जन्म ही सुधारता है और न कोई कमाई ही करता है।

## धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का

मैंने यह दशा देखकर गुरु ऋण से उत्तीर्ण होने के लिये विवश यह काम किया है कि सच्ची बात तुम लोगों को बता देता हूँ हम गुरु महात्माओं ने तुम लोगों को मूर्ख बनाया हुआ है। मैं कहता हूँ कि तुम को अमल (साधन – अभ्यास) करना बहुत आवश्यक है। साधन से ही कुल श्रेणियाँ पूरी होंगी। उस समय तुमको स्वंय वैराग हो जायगा। यह संसार ऐसा ही है। तुम साधन करते हुये चले चलो। फिर इससे अगली श्रेणी में अभ्यास करना है जिसको त्रिकुटी कहते है। त्रिकुटी में ध्यान करने से क्या होता है? जिस वस्तु को तुम जानना चाहते हो, उसका ज्ञान हो





जायेगा। तुम्हारे अन्तर में त्रिकुटी लगेगी। इसका रूप या इसका इष्ट बनाकर तुम अपने अन्तर में रखोगे, फिर इस पर तुम ध्यान जमाओगे। तब इस वस्तु का ज्ञान हो जायेगा, यह जितने वैज्ञानिक हैं यह त्रिकुटी ही तो लगाते हैं। त्रिकुटी का स्थान ओ३म् का स्थान कहलाता है। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय–एक विचार पैदा होता है, कुछ देर ठहरता है और फिर समाप्त हो जाता है। इस त्रिकुटी के स्थान में यदि कोई चला जाये, चाहे ब्रह्म ज्ञान के ख्याल से चला जाये, या दुनियां के ज्ञान के ख्याल से चला जाये, इसका ज्ञान पूरा हो जायेगा। ऋषि मुनि लोग त्रिकुटी पर बैठकर आयुर्वेदिक ग्रंथ लिखा करते थे। इसी त्रिकुटी पर बैठकर वह राग विद्या का वर्णन करते थे। त्रिकुटी पर बैठकर यह जितने इल्म हैं–साईंस के, वेद वेदान्त के, उपनिषदों के यह सब निकला करते थे। वेदों की उत्पत्ति ही त्रिकुटी से होती है। वेद नाम है ज्ञान का। जिस चीज का कोई आदमी ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, वह इस इष्ट को लेकर इसको अपनी खोपड़ी में रखकर इसका ध्यान करके, इसकी आराधना करके इसके ऊपर वृति को जमाकर इसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है और इसमें निर्पुण हो जाता है।

यह मैं स्वंय किया करता हूँ। मैं हमेशा नई–नई बातें कहता रहता हूँ। क्यों कहता हूँ? क्योंकि असलियत को जानने का आदर्श रखता हूँ। जब मेरी त्रिकुटी लगती है तो मैं कोई नई बात दुनिया के सामने कहता रहता हूँ। यह त्रिकुटी है ओंकार का स्थान और यह ओ३म् (ब्रह्म) ही हमारी इस दुनिया को बनाने वाला है। इस त्रिकुटी के स्थान की सहायता से और ओउम् (ब्रह्म) की सहायता से तुमको परमार्थ पर आना है। हिन्दू जाति में इस ओउम् की बड़ी भारी महिमा है हिन्दुओं में हर वस्तु के पहले ओउम् आता है। ओउम् भूओं भुवः ओं स्वः ओं जनः ओउम् तपः ओउम् सत्यम्। यह कुंजी है ऊपर जाने की। यह मैट्रिक का दरवाजा है ज्ञान का, इसके आगे अरफान (ज्ञान) आ जाता है। मुसलमानों में इसको अरफान कहते हैं। इस ओउम् से ही दुनिया का ज्ञान होता है और परमार्थ का भी होता है। यह ओउम् ही सृष्टि की रचना की जान है। इसके आगे जब मनुष्य का मन थक जाता है तब वह शान्ति चाहता है। वह त्रिकुटी लगाता है और ज्ञान प्राप्त करता है। दुनियां के खेल खेलते खेलते जब मन थक जाता है तब वह आराम चाहता है।

उसके आगे सुन्न और महासुन्न है। सविकल्प और निर्विकल्प समाधि लग जाती है। इस समाधि अवस्था का नाम है। आवाज समाधि लग जाती है। इसको यह सारंग कहते हैं, रारग सारंग। हिन्दू शास्त्रों में इसको शुद्ध ब्रह्म कहा जाता है। वह शक्ति जो उत्पत्ति करती है, इसमें कोई मैल न रहे। वह निर्मल हो जाये। जब मन निर्मल हो जाता है तब तुमको शान्ति मिलती है। यह तीसरी श्रेणी है। इसमें फिर समाधि लग जाती है। तब मन के होशहवास (चेतना) खो जाते हैं, फिर बुद्धि काम नहीं करती है। जो लोग अभ्यासी होते हैं वह इस अवस्था को पसन्द नहीं करते हैं। कौन जड़ बन कर पड़ा रहे। इसके आगे सोहंकार है। सोहंकार में जाने से मन समाप्त हो जाता है। केवल आत्मा ही रह जाती है। चूंकि इसको अपने रूप का ज्ञान हो जाता है वह फिर इस मन में आती नहीं है। इसको पता लग जाता है कि यह सब कुछ माना हुआ है। फिर वह फँसता नहीं है। इसके आगे सत्याकार अर्थात आत्मा का परमात्मा में लय होकर वह अपने आत्मपने का भाव छोड़ देता है। यह पांच नाम है। राधास्वामी मत वालों के और भी पंच नाम हैं। दूसरे शब्दों में हिन्दू शास्त्रों में भी इनके लिये 'कोष' शब्द लिखा गया है यह है अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमयकोष, विज्ञानमय कोष, और आनन्दमय कोष। इनसे निकलने पर फिर हमारी आदि (अवस्था) है जहां से हम आये हुये हैं। जीवों को साधन से गुजारता है। जैसे दातादयाल ने मुझे गुजारा। मैं रूप रंगों में फँसा हुआ था। दाता का रूप आ जाता था। मैं इस को ही सत्य मानता था। यह गुरु पदवी मुझको मन के रूप को समझने के लिये ही मिली थी। जब इसको मैं समझ गया हूँ। इसलिये मैं विवश ऊपर चला जाता हूँ। कहाँ? सतपद से परे। यह मैं, मेरी अपनी आदि अवस्था।

मैं पंडितजी को सत्संग करा रहा हूँ ताकि इनको नाम की असलियत का पता लग जाये कि इनको जाना कहां है और हमारा इष्ट पद क्या है। सन्तों ने मुझे बतलाया है कि मैं कहाँ से आया हूँ। मैं आया हुआ हूँ उस परमतत्व से जो न कभी जन्मता है और मरता है। वह आदि है, अनादि है और जुगदि है। इसका पता कैसे लगेगा? साधन और अभ्यास करने से। आप लोगों के कहने से इसका मुझे निश्चय हो गया है कि वास्तव में मैं आदि हूँ, अनादि हूँ, और जुगादि। मृत्यु यदि होती है तो देह और मन की ही होती है और प्रकाश की होती है। मुझे मौत नहीं है। मैं जात





(निजस्वरूप) हूँ। यह केवल कहने या वार्तालाप के लिये मैं शब्द प्रयोग कर रहा हूँ क्योंकि वाणी (जुबान) मुझको मिली हुई है। इसमें 'मैं' और 'तू' प्रयोग करना पड़ता है अन्यथा वहां न 'मैं' है, न 'तू' है। यह है नाम की महिमा। हम कौन है हमको पता नहीं है। विश्वास नहीं है। चूंकि अपना अनुभव सन्तों से मिलता है जिस मेरे तरह रिश्तेदारों ने तथा वातावरण ने मुझको यह निश्चय करा दिया है कि मैं मस्तराम का लड़का हूँ यद्यपि मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है, इसी तरह सन्तों का यह सत्संग और साधन यह निश्चय कर देता है कि मेरा यह नाम है जो आदि है, अनादि है, जुगादि है।

जिसको नाम की प्राप्ति हो जाये वह सदा प्रसन्न और बेफिक्र रहेगा। नाम जपने वाले का मन (अन्तकरण) शुद्ध पवित्र हो जाता है।

# तृतीय सत्संग

(मानवता मंदिर होशियारपुर १९-११-६९)

## संतमत और साधन

**शब्द**

**सहज किया उपकार, धन्य गुरु देव गुसाईं।।**
**दया से बख्शी चरन की छाया, काग वृति को हंस बनाया।**
**अब नहि व्यापे काल न माया, सच्चा भया उद्धार।।**
**सत संगत में वचन सुनाये, ऊँच नीच गति सकल बताये।**
**कथनी छुड़ा, करनी करवाये, सुरत शब्द मत सार।।**
**पहिली श्रेणी सतसंगत की, दूजे साध की पदवी।**
**तीजे हंस अवस्था बख्शी, चौथे सोहंकार ।।**
**पंचम सत पद ले पहुँचाया, अलख अगम अनुभव दरसाया।**

**आवागवन का भेद कटाया, राधास्वामी के दरबार।**
**आवागमन का भेद कटाया, राधास्वामी के दरबार।।**
**सहस कमल सोभा सहसकारा, त्रिकुटी में ओंकार पसारा।**
**भंवर की घाटी सोंहकारा, सतपद सत्याकार।।**
**नाहिं यह ज्ञान न कर्म कहानी, क्या समझे कोई ज्ञानी ध्यानी।**
**नहीं योगी नहीं तपसी जानी, संत पथ व्यौहार।।**
**अलख लखा गम अगम की पाई, नाम रूप रेखा तज धाई।**
**राधास्वामी चरन कमल लिपटाई, सुरत हुई भवपार।।**

यहाँ एक बड़े विद्वान पंडितजी कुरुक्षेत्र से नाम लेने के लिये आये हुये हैं। मैं जिम्मेदारी को महसूस करता हूँ। रात के डेढ़ बजे से सुबह सात बजे तक मैं सोया नहीं। इस नाम को ही मैं समझता रहा हूँ क्योंकि इनको सत्संग कराना था। यह ब्राह्मण वंश के है। इनको ब्राह्मणों के ही भाव से समझाना है। ब्रह्म तत्व से ही समझाना है।

हमारे यहां बहुत ऋषि हुये हैं मगर इनमें चार ऋषि मुख्य है। प्रथम मनु। मनु ने जीवों को सांसारिक जीवन में मर्यादा बद्ध किया है जिससे जीवन सुख शान्ति से व्यतीत हो अच्छी संतति उत्पन्न करने के तरीके, समय के अनुसार धर्म व्यवहार मनु ने बताया है।

द्वितीय भृगु ऋषि है। इन्होंने बताया है कि जो हम कर्म करते हैं, वासना करते हैं, कर्म की जड़ आशायें होती है। हमको इन आशाओं का फल अवश्य मिलता है। यदि ऐसी आशा रखोगे तो यह हो जायेगा और ऐसा जन्म लेना पड़ेगा। ऐसी आशा रखोगे तो ऐसा होगा। फिर भृगु ऋषि ने हमको शुभ कर्म करने की और अच्छी वासना रखने की शिक्षा दी है ताकि हमारा जीवन भली प्रकार व्यतीत हो जाये।

तृतीय ऋषि वशिष्ठ है। इन्होंने योग वशिष्ठ लिखकर हमें यह सिद्ध किया है कि यहाँ जितनी रचना हे सब संकल्पमय है। माया की रचना है। योग वशिष्ठ में ऐसी-ऐसी कथायें दी गई है यहाँ तक कि ब्रह्मा को भी कल्पित शरीर वाला माना है। इन सबसे आगे चौथे ऋषि व्यास है। इन्होंने इन तीनों को बताते हुये





इस संसार से हमेशा के लिये निकलने का तरीका बताया है। इस संसार में निवृति मार्ग केवल व्यास ऋषि ने ही बताया है। मनु के नियम में रहने वाला मनुष्य निवृति मार्ग में जा नहीं सकता। वह अपने जीवन को उच्च बना सकता है। वह उस समय जायेगा जब इसको वशिष्ठ ऋषि की शिक्षा का ज्ञान हो जायेगा कि सारा संसार उत्पति, स्थिति और प्रलय-ब्रह्म, विष्णु और महेश सब का सब मनोमय जगत है या माया कृत है।

जब यह ज्ञान हो जाता है कि यह सारा संसार मायाकृत है फिर इसके आगे संत मत शुरू होता है। मैं ग्रन्थों की बात नहीं कहता हूँ। शास्त्रों में क्या लिखा है मैं नहीं जानता। दातादयाल ने क्या कहा है इसका मुझे अनुभव नहीं है मुझे अपने जीवन का अनुभव है। मैंने इस मन की वशिष्ट की श्रेणी पर वशिष्ठ की शिक्षा को सच्चा समझा है। जब सत्संगियों ने आकर कहा कि मेरा रूप उनके अन्दर प्रगट होता है, मरते समय ले जाता है, दवायें बताता है मगर मैं नहीं होता तो मुझे यह निश्चय हो गया कि इन रुप रंग या मन के चक्र से परे कोई दुनिया है। फिर मैं जब अकेला होता हूँ तो इस ज्ञान से सम्पूर्ण वृतियां जो संकल्प विकल उठाती थी या रूप रंग बनकर मेरे सामने आती थी मैं समझता हूँ यह मेरे अन्तर में है नहीं अन्तर है नहीं, मगर भासती हैं। जब तक मुझको यह ज्ञान नहीं था और जो कुछ भासता था मैं इसको सत माना करता था। मैं अपने जीवन में वैसे ही दृश्य देखा करता था जैसे मेरे अन्तर आशायें और वासनायें पैदा होती थी। तो प्रवृति मार्ग की उन्नति के लिए हमारे ऋषियों शिव संकल्पमस्तु बताया हुआ है अर्थात् अपनी आशाओं अपने विचार तथा संकल्पों को ठीक रखना है ताकि हमारी माया से देश का जीवन सुख शान्ति से व्यतीत हो जाये।

जब मैं इन सबको छोड़ जाता हूँ तब फिर उस समय मेरा अपनापन ही रह जाता है। तुम इसको मेरा मन कह लो। वह बराबर की स्थिति में रहता है।

जब वह चेतन शक्ति बनी रहती है तो वह कुछ न कुछ तो है, वह चेतन शक्ति अपने ही अन्दर ऊपर जाकर बढ़ती है और फैलती है। तब उसमें प्रकाश आता है और शब्द आता है। प्रकाश भी और शब्द भी इस चेतन शक्ति का प्राकटय (अभिव्यक्ति) है। वह प्रकाश और शब्द का मंडल है। मेरे अन्तर में वह है सोहंग

पुरुष, पारब्रह्म या परमात्मा या सतपद या अलख अगम। जिस तरह मेरे मन की दुनिया अनेक प्रकार के संकल्प बनाकर अपनी वासना के जाल को एक विस्तृत समुद्र बना लेती है इसी तरह मेरा अपना अनुभव है कि मेरी वह चेतन शक्ति इस मस्तक से ऊपर जाकर दसवें द्वार से ऊपर जाकर अपनी चेतन शक्ति की दुनियां बना लेती है। वह जो दुनियाँ बनाती है वह चेतनता की दुनियां होती है पहिले तो मेरा मन मानसिक माया की दुनिया बनाता था। अब जब से मुझे यह ज्ञात हो गया है तो फिर मैं अपने अन्तर में अपने चेतन रूप का खेल खेलता हूँ अर्थात चेतनता के खेल का विस्तार करके इसमें आनन्द लेता हूँ। यह अवस्था किस की दया से आई है? चूंकि मैं चाहता था अपने आदि को पालूं या मेरा मालिके कुल कहां है, दाता दयाल ने मुझ पर उपकार किया। क्या?

**सहज किया उपकार, धन्य गुरुदेव गुसाईं।।**
**दया से बख्शी चरन की छाया, काग वृति को हंस बनाया।।**

मेरा मन नीचे को गिरता था गंदी वस्तुओं पर गिरता था। मेरे मन के विचार मलीन थे। नीचे को गिरना काग दृष्टि है। काग सदा गन्दी वस्तुओं पर गिरता है। यह जो माया का खेल है गन्दा नहीं तो क्या है ! यह हमको हमेशा फँसाता है। पुत्र का मोह दुख देता है। धन में फँसना दुख है। यह सब काग दृष्टि है। फिर हंस गति क्या है? यह ज्ञान हो जाना कि यह सब माया है। इस माया के आगे अपना देश है या घर है। यह बात दाता दयाल मुझे समझाया करते थे मगर मेरी समझ में बात नहीं आती थी। इस बात को समझने को मुझे गुरु पदवी दी गई थी।

यह जो पंडित जी आये हैं इनका नाम तो जानता नहीं हूँ मगर इनका नाम रख देता हूँ सार भेदी पंडित। जो कुछ मैंने अपने जीवन में अनुभव किया है वही इनसे कहता हूं। दातादयाल ने एक शब्द में काग दृष्टि की व्याख्या के सिलसिले में लिखा है:-

**तुम उलट चलो असमान, नीचे क्यों रहना।**
**नीचे नीचे नीच की संगत, नीचे भाव में नीच की रंगत।**
**त्याग कुसंग कर सतसंगत, भव के दुख सुख क्यों सहना।।**

यह मेरा भव का भ्रम नहीं जाता था क्योंकि जो मेरे अन्तर से रूप, रंग,





रेखायें, विचार या ऋद्धि सिद्धि निकला करती थी वह माया छाया और प्रतिबिम्ब सिद्ध हुई। मैं इस बात को जानता हूँ कि दुनिया को इससे निकलने की आवश्यकता नहीं है। जिनको आवश्यकता नहीं है उनको मेरा साहित्य और वचन कुछ लाभ नहीं पहुँचाते मगर अब मेरे वश की बात नहीं है। मैं इसलिये आया था कि अपने घर पहुँचु। चूंकि मेरे मन पर मन मतान्तरों के संस्कार भिन्न-2 रूप में पड़े हुए थे, मुझे यही एक संत मत मिला जिसने सब का खंडन कर दिया है। इसने मनु का खंडन कैसे किया है? यह ख्याल देकर कि यदि जीवन भर मनुष्य व्यवहार के नियमों में ही बँधा रहेगा तो तुम भवसागर से पार नहीं जा सकोगे। जिस दृष्टि से यह खंडन किया गया है वह बिल्कुल सत्य है मगर इस दुनिया में रहने के लिये यदि मनु के नियमों का खण्डन किया जायेगा तो तुम्हारा यह संसार मुसीबत का कारण बन जायेगा। ऐसे ही कर्म काण्ड का मसला है। यदि सारी जिन्दगी कर्मों के चक्र में ही फँसे रहोगे तो तुम इस संसार निकल नहीं सकते। तुम्हारा भव सागर अच्छा बन जायेगा। इसलिये अपने घर जाने के लिये इस कर्म काण्ड का भी खंडन आवश्यक है। जब तक इस दुनिया का तुम्हारा जीवन है यदि तुम मनु ऋषि के नियम की तोड़ोगे, तो तुम अपराधी कहलाओगे। ऐसे ही वशिष्ठ ऋषि ने तुमको यह बता दिया है कि यह सब कल्पना मात्र है। मनोमय जगत है। यदि जीवन भर यही सोचते रहोगे और अपने आपको इस कल्पना से परे नहीं ले जाओगे, तो तुम्हारा यह सोचते रहना ही कि यह मन ही माया है, तब भी तुमने अपने घर नहीं जा सकते। इसलिये सन्तों ने तुमको साधन अभ्यास बताया है। फिर साधन क्या है? जब तुमको यह निश्चय हो जाये कि यह सब माया है तो अपने आपको चेतन स्वरूप का जो शब्द और प्रकाश है इसको धारण करो। यदि तुम इसको नहीं पकड़ोगे और संसार को कल्पित ही मानते रहोगे तो तुम गिरते रहोगे और अपने घर नहीं जा सकते।

फिर नाम क्या है? नाम है मनुष्य की अपनी आत्मा का, अपने प्रकाश का या अपने शब्द का। अपने निज स्वरूप में ठहरने का नाम ही नाम का जपना है। सारभेदी ब्राह्मण देवता मेरे पास नाम लेने के लिये आये हैं। इस समय मेरी क्या

ड्यूटी है जो दाता दयाल ने मेरे सुपुर्द की है:-

**सहज किया उपकार, धन्य गुरुदेव गुसाईं।।**
**दया से बख्शी चरन की छाया, काग वृत्ति को हंस बनाया।**
**अब नहिं व्यापै काल न माया, सच्चा भया उद्धार।।**

मैं अपनी जिम्मेदारी को महसूस करता हूँ। आज चार दिन से सोया नहीं हूँ। एक आदमी मुझे गुरु मान कर नाम लेने आया है। मैं तो किसी को नाम देता नहीं हूँ। मनुष्य जिस चीज से घृणा करता है वह इसके गले का हार हो जाती है। इन डेरे धामों से मुझे उदासीनता आ गई है। मैंने सन् १९४२ में कहा था कि मैं किसी को नाम नहीं दूँगा। मैंने मानवता मंन्दिर बनवाया, वह भी मैंने सच्चाई के साथ बनवाया है। इसके बनाने के लिये कोई हेराफेरी, धोखा फरेब मैंने नहीं किया है। अब नाम देने का समय आ गया है। सत्संग में गुरु क्या करता है?

**सत्संगत में वचन सुनाये।**
**ऊंच नीच गति सबल बताये**
**कथनी छुड़ा करनी करवाये।**
**सुरत शब्द मतसार।।**

सार तत्व को समझाने में मैंने कोई कमी नहीं छोड़ी है। इतनी स्पष्टता और सच्चाई से आज तक किसी महात्मा ने वचन नहीं कहे हैं। सबने सैन-बैन अर्थात संकेत किया है। मैंने इशारा नहीं किया। किन्तु बात खोलकर कह दी। यह मेरी वर्णन शैली केवल अधिकारियों के लिये है। यह सर्व साधारण लोगों के काम की वस्तु नहीं है। जो लोग अधिकारी हैं उन्हीं के लिये नाम हूँ।

**पहली श्रेणी सतसंगत की, दूजे साधु की पदवी।**
**तीजे हंस अवस्था बख्शी, चौथे सोहंकार।।**

ऐ सार भेदी पंडितजी! मैं तुमसे कहता हूँ कि यह सत्संग की एक श्रेणी है। मेरा सत्संग सुनते हो। सत्संग को सुनना, समझना और गुनना यह पहिली सीढ़ी है। मैंने दातादयाल की दया से तथा कुदरत ने जितनी बुद्धि मुझको दी है, जो कुछ सत वस्तु को मैंने समझा है, उसे स्वयं अनुभव करके वर्णन कर दिया है। इस ज्ञान के प्राप्त करने के बाद कि यह सब माया का खेल है कोई अधिकारी जब अकेला





बैठेगा, मन के संकल्प उसके सामने न आयेंगें। इसको साधु गति के सुमिरन ध्यान की आवश्यकता नहीं पड़ेगी मगर यह बात कठिन है। हम इस कलियुग के जीव हैं। हम अपने आपको इस संसार से त्यागी कह, कहीं साधु का भेष बना लें, जटाधारी बन जायें, नंगे भूखे मस्त फिरा करें मगर इस संसार की आवश्यकतायें सुप्त मस्तिष्क में मौजूद रहती हैं। जब भी मनुष्य अकेला बैठेगा, इसकी वासनायें और अनेक प्रकार के विचार इसके अन्दर पैदा होते रहेंगे। अपने मन की दशाओं का स्वयं अनुभव लगाओ तब समझ जाओगे। यदि मन संकल्प विकल्प उठायें तो फिर सुमिरन ध्यान की आवश्यकता अवश्य होगी। मन में अनेक प्रकार की आशायें तो अवश्य रहेंगी। यह मन का गुण है। मन का आशा करना इसका स्वभाव है। एक आशा जो हानिकारक होती है इसको छुड़ाकर दूसरी आशायें उत्पन्न करने की आवश्यकता रहती है। इसलिये सुमिरन ध्यान करना है। मैं पुरानी प्रणाली को तोड़ना नहीं चाहता हूँ। मन के विचारों को रोकने के लिये वर्णात्मक नाम राधास्वामी से काम लेने की आवश्यकता है अथवा गुरु के स्वरूप का ध्यान करना है। आप इसे करें। आप और किसी वर्णात्मक नाम से या किसी और स्वरूप से मन के विचारों को रोक सकते हो यदि तुम ऐसे करोगे तो तुम में से अहंभाव का दोष नहीं जायेगा। तुम्हारे अन्तर में तो स्वयं ही माया और अहंभाव का दोष है। वह तुम्हारा दोष नहीं जायेगा। क्यों नहीं जायेगा? क्योंकि जहां तुमने मुझसे और मतलब (काम) की बातें प्राप्त कर ली है जिनको तुम्हारा मन अपने पंथ की टेक के कारण मानता था वह टेक तुमने नहीं छोड़ी है। फिर तुम अहंभाव में जाते रहते हो। यह एक प्रकार का कृतध्नपना है। यदि तुम न भी करो तो यह हो सकता है कि तुम आगे चले जाओ, मगर तुम इष्ट पद पर नहीं पहुँच सकोगे क्योंकि इष्ट पद पर तुमको तुम्हारी सच्ची वासना ही पहुँचायेगी। दातादयाल जो नाम दिया करते थे, यदि उसके अनुसार किसी का विश्वास गुरु स्वरूप पर न भी आया हो, जिसका जी चाहे किसी का ध्यान करे और किसी नाम ले मगर इसका अहंभाव नहीं जायेगा। यदि शुरू में ऐसा करोगे तो जब दसवें द्वार में जाओ, तुमको यह विश्वास हो जाये कि जो प्रकाश है वह गुरु का चरण है और गुरु ही शब्द स्वरूप है, तो तुम इस माया से निकल जाओगे क्योंकि गुरु का असली रूप ब्रह्म है। इसके चरण

प्रकाश है। यह जो गुरु का स्वरूप है जिसे हम मन से बनाते हैं या वर्णात्मक नाम लेते हैं, यह माया का देश है। यह एक प्रणाली है निष्ठा है जिसकी मर्यादा मेरी समझ में एक गुरु परायण जीव को अवश्य पालन करनी चाहिये मगर मैं आप पर कोई बन्दिश नहीं लगाता हूँ। आप की इच्छा है किसी भी वर्णात्मक नाम से काम लो या किसी के भी रूप का ध्यान करो। यह एक बात है।

वर्णात्मक नाम में और रूप के ध्यान में प्रभाव अवश्य होता है। जैसे मैं नींबू का नाम लेता हूँ या तुम्हारे सामने नींबू काटकर नमक मिर्च लगाकर चूसता हूं मेरे सामने चूसने से तुम्हारे मुँह में भी पानी आ जायेगा। जब मैं नींबू का नाम लूंगा तुम्हारे मुँह में पानी अवश्य ही आ जायेगा क्योंकि तुम्हारे मन में यह ख्याल बैठा हुआ है कि नींबू में खटाई होती है। नींबू का चूसने वाला स्वयं भी खटाई महसूस करता है कि नींबू खट्टा होता है इसको देखने से भी तुम्हारे मुँह में पानी आ जाता है। इसलिये किसी पुरुष का जो स्वयं इस अवस्था में पहुँचा हुआ है, उसके दर्शन से, उनके ध्यान करने से उसकी शान्ति, उसके आनन्द और ज्ञान का प्रभाव तुम्हारे ऊपर भी पड़ेगा। जैसे जो व्यक्ति नींबू चूस रहा हो उसके ध्यान करने से या उसके देखने से तुम्हारे मुंह में भी खटाई का अंश पैदा हो जायगा।

श्री भगवान रामचन्द्र की असली फोटो यहां नहीं है, श्री कृष्ण की भी असली फोटो यहां नहीं है। किसी को इसका पता भी नहीं है मगर मरहठे कृष्ण जी व राम जी को मरहठी शक्ल में दिखायेगें। पंजाबी उनको पंजाबी शक्ल में दिखायेगे। बंगाली उनको बंगाली शक्ल में दिखायेगें। इसलिये मैं निर्भय होकर कहना चाहता हूँ कि राम कृष्ण के चित्र जो बाजार में बिकते हैं, इनका ध्यान करने से पूरा लाभ नहीं होगा। किसी जीवित पूर्ण पुरुष के दर्शन और उसका ध्यान करने से तुमको लाभ पहुँच सकता है। यह साईंस का सिद्धान्त है।

रह गया नाम, नाम क्या है? जो वर्णात्मक नाम है वह एक भाव है। एक महापुरुष के मन में एक वासना है एक ख्याल है, एक शब्द है जिसके द्वारा इसके दिमाग में संस्कार पैदा हो जाता है। जो शब्द है वह स्वयं संस्कार पैदा नहीं करता है। जो भाव है इस शब्द के द्वारा जो गुरु ने तुमको दिया है, वह भाव ही काम करता है। उदाहरण रूप में जब हम ससुराल जाते हैं हमारी सालियां हमको कहती है





हमारे घर में एक बुडढ़ा बैठा हुआ है। अपनी दादी को तुम क्यों नही लाये। यद्यपि शब्द बड़े गन्दे हैं। मगर सालियों के कहने का भाव जो है इन शब्दों में वह मनोरंजन है। इस लिये गुरु का दिया हुआ नाम उसके साथ भाव रखता है। इसका कीमयाई प्रभाव होता है वह सहायता करता है। शब्द था–

**सत संगत में वचन सुनाये, ऊंच नीच गति सकल बताये।**
**कथनी छुड़ा करनी करवाये, सुरत शब्द मत सार।।**

ऐ सार भेदी पण्डित! तुमको समझाने में आज तीन चार दिन से कोई कमी मैंने नहीं छोड़ी है। अब आगे तुम्हारा भाग्य!

**पहली श्रेणी सतसंगत की, दूजे साध की पदवी।**
**तीजे हंस अवस्था बख्शी, चौथे सोहंकार।।**

तुमने क्या करना है? अपने मन को तुम जानते हो। इसे मैं नहीं जानता। मैं ऐसा पाखंडी गुरु नहीं हूँ, जो यह दावा करे कि तुम्हारे मन का हाल मैं नहीं जानता हूँ। हाँ अनुमान लगा सकता हूँ और इसके आधार पर इतना कह सकता हूँ यद्यपि अभी संसार से बहुत कुछ उपराम होना मगर शत प्रतिशत उपराम अभी आया नहीं है। आदमी के मन का हाल किसी को पता नहीं होता। मैं भी इस से बरी नहीं हूँ। यह कर्म है पिछले जन्म के। यदि आपका मन संकल्प उठाता है तो मैं यह कहूंगा कि राधास्वामी नाम का सुमिरन और गुरु स्वरूप का ध्यान करते करते अपने मन को रोकने की कोशिश किया करो। साथ ही जब मन लग जाये फिर अपने अन्तर में जहां तुम्हारी आत्मा यदि सच पूछो तो गुरु का स्वरूप है। तुम कुछ लोग हनमकुण्डा से आये हो अब तुम खाली न जाओ। मैं तुम से कहता हूँ तुम गुरु को महर्षि जी महाराज समझते हो। जिसको अभी संसार की इच्छायें हैं, उनकी समझ में यह कैसे आयेगी। दातादयाल का शब्द है:–

**घट में दर्शन पाओगे, सन्देह कुछ इसमें नहीं।**
**मैं तो घट में हूँ तुम्हारे, ढूंढ लों मुझको वहीं।।**
**शब्द सुनते ही मेरा, अन्तर मे चित को साध कर।**
**सुरत मेरा रूप है, इसको समझ लेना यहीं।।**
**सूक्ष्म हूँ स्थूल हूँ कारण हूँ, कारण से परे।**

**देख दृष्टि को जमाकर, अपने अन्तर में कहीं।।**

मगर इस बात को समझना है, कहना नहीं है। यदि कहोगे तो अपराधी बनोगे। हमको हमारे मां बाप ने अपने स्वाद के लिये अपनी खुशी या आनन्द के लिये पैदा किया है हम भी इस बात को जानते हैं, क्योंकि हमने भी शादी कराकर संतान पैदा की है मगर यह कहने का दस्तूर नहीं है कि माँ बाप ने अपने स्वाद के लिये हमको पैदा किया है। इसलिये तुम बात को समझो और चुप रहो। तुम अपने अन्तर में साधन किया करो। संसार का व्यवहार नहीं तोड़ना। गुरु अपनी जगह पर गुरु है। चेला अपनी जगह पर चेला है। स्त्री अपनी जगह पर स्त्री है। मां अपनी जगह पर मां है। व्यवहार भ्रष्ट नहीं होना चाहिये। तुमको नुक्ता बता दिया है। अमल करना तुम्हारा अपना काम है।

# चतुर्थ सत्संग

(मानवता मन्दिर होशियारपुर २०-११-६९)

## सारभेद

**शब्द**

**तुम उलट चलो असमान, नीचे क्यों रहना।**
**नीचे नीचे नीच की संगत, नीचे भाव से नीच की रंगत।**
**त्याग कुसंग कर सतसंगत भव के दुख सुख क्यों सहना।।**

**सीधा मारग जगत का, उल्टा सन्त का पंथ।**
**जो उल्टे मारग चले, सो पावे निज कंत।।**
**इसके भरम में जो कोई आया, सो तो रहे जग फन्द बंधाया।**





**भव के भरम में क्यों रहना, तुम उलट चलो असमान०।।**

**ऊंचे गंग तरंग हैं, ऊंचे जमुन का नीर।**
**ऊंचे सरस्वती धार है, शुद्ध अथाह् गंभीर।।**
**नीचे कष्ट क्लेश है भारी, नीचे माया करे दुखारी।**
**कर्म धर्म में पड़े संसारी, सार न पावे मायाधारी।**
**तीन ताप में क्यों दहना , उलट चलो आसमान०।।**

**ऊंचे सूर प्रकाश है, ऊँचे चन्द्र जोति।**
**ऊँचे ज्ञान भंडार हैं, ऊँचे सत का सोत।।**
**ऊंचे पुरुष विराट हैं, ऊँचे हैं ओंकार।**
**ऊंचे शून्य का देश है, ऊंचे सोहंकार।।**
**नीचे इन्द्री भोग विलासा, नीचे ही आसा नीचे ही वासा।**
**नीचे जो कोई करे निवासा, सोतो रह दिन रात निरास।।**
**नीचे चाह को क्यों चहना, तुम उलट चलो आसमान०।।**

**ऊँचे सतपद धाम हैं, ऊँचे अगम-अलख।**
**ऊँचे राधास्वामी नाम है, ऊँचे चढ़कर देख।।**
**नीचे काल कम है काया, नीचे भरम पाखंड का पाया।**
**नीचे माया मारे छापा, भ्रान्ति से नहिं सूझे आपा।।**
**नीचे कथा को क्यों कहना। तुम उलट चलो०।।**

मैं कभी नामदान के स्यापे में नहीं पड़ा। तुम कहोगे कि मैंने शब्द स्यापा प्रयोग किया है। स्यापा कहते है दुख को। स्यापा लोग तब ही करते है जब दुख होता है। इस गुरुयायी के करने में मुझे दुख होता है। इससे कोई आदमी यह न समझे कि मुझे ऊपर जाने में दुख होता है। मैंने सारा जीवन इसी साधन अभ्यास में व्यतीत किया है। इस समय मेरा ऊपर जाना नीचे के कुल स्थानों को छोड़ जाना है।

अब मुझे अभ्यास करने के लिये सहसदल कंवल, त्रिकुटी सुन्न, महासुन्न भँवरगुफा की श्रेणियों से गुजारे की आवश्यकता नहीं रही। चूंकि सुरत ने इन सब स्थानों या श्रेणियों का अनुभव कर लिया और सुरत को असलियत का ज्ञान हो गया है, अब वह एक सैंकिड में बिना किसी संघर्ष के स्वयं अपने निज स्वरूप में चली जाती है। चूंकि मुझे नाम दान देना था, मुझे इन सब श्रेणियों से गुजर कर स्वयं अनुभव करके सारी बातें बतानी थीं इसलिये मैंने कहा नाम दान स्यापा है। अब अन्तिम अवस्था आ गई है मेरे लिये सत लख और अनाम की।

असली बात तो दुनिया समझती नहीं है मगर तुम सारभेदी ब्राह्मण हो। तुम नामदान को मेरे पास आये हो इसलिये मुझको ४-५ दिन अन्तर में स्वयं जाकर ताजा अनुभव प्राप्त करना था। जिस तरह दाता दयाल ने शब्द में लिखा है- ''तुम उलट चलो आसमान नीचे क्यों रहना।'' इस शब्द के साधन में कल रात भर और आज रात भर सोचता रहा हूँ। आज सुबह भी मैंने इसी क्रम में व्यतीत किया है। मैं सत्यप्रिय मनुष्य हूँ। मैं कोई ऐसी बात नहीं कहता जिसको स्वयं आजमाया नहीं हो। नामदान के कई मरहले हैं। नामदान का अर्थ है परम सुख और शान्ति का प्राप्त करना शरीर में रहते हुए अर्थात अन्नमय कोष में रहते हुये सुख प्राप्त करना शरीर में रहते हुये अर्थात अन्नमय कोष में रहते हुये सुख प्राप्त करने का साधन और है। मन में रहते हुये सुख प्राप्ति का साधनऔर है। बुद्धि में रहते हुये बुद्धि के सुखी रखने का साधन और है। प्राण में रहते हुऐ सुख प्राप्ति का साधन और है, और आत्मा में रहते हुये आत्मानन्द साधन और है। यह जो नाम है। वह इस गति को पहुँचाता है जहां परम परमात्मा रहता है न आत्मा। यदि आत्मा ही रहती है तो फिर रचना अवश्य करनी होगी। परमात्मा भी तो रचना ही करता है। यदि कोई व्यक्ति साधन अभ्यास करके परमात्मा के देश में चला गया तो परमात्मा का कर्म है रचना करना। परमात्मा ही से आत्मा बनती है और आत्मा स्वयं यह सारा संसार बना लेती है और उसके दुख सुख भोगती रहती है। यह नाम जो मुझको दाता दयाल से मिला, मैंने साधन अभ्यास करके अनुभव कर लिया है। यह मनुष्य की उस वस्तु को जो इस शरीर में रहती है पिंड, अंड, ब्रह्माण्ड, आत्मा परमात्मा, ब्रह्म और शब्द ब्रह्म से अर्थात सबसे ऊंचा ले जाता है। मैं जो कुछ कहता हूँ वह मैं निज अनुभव के





आधार पर कहता हूँ। कबीर साहब का एक शब्द है-

**रोड़ा हुआ बाट का, तज आया अभिमान।**
**लोभ, मोह, तृष्णा तजे, ताहि मिले निज नाम।।**
**रोड़ा भया तो क्या भया,पंथी को दुख दे।**
**साधु ऐसा चाहिये, जैसे पिंडे खेह।।**
**खेह भई तो क्या हुआ, उड़ उड़ लागे अंग।**
**साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर पतंग।।**
**नीर भया तो क्या भया, जो ता-ता सीरा होय।**
**साधु ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय।।**
**हरि भया तो क्या भया, तो कर्त्ता धर्ता होय।**
**साधु ऐसा चाहिए, हरि भज निर्मल होय।।**
**निर्मल भया तो क्या भया, जो निर्मल मांगे ठौर।**
**मल निर्मल से रहित है, ते साधु कोई और।।**

कबीर साहब कहते हैं कि हरि को भज कर निर्मल हो जाओ। मैं इस नाम का पुजारी रहा हूँ और हरि को भज कर निर्मल हो जाना चाहता हूँ? ऐ सारभेदी ब्राह्मण! क्या तुमको यहां पहुँचने की इच्छा है। ऐसी इच्छा कौन रखता है? ऐसी इच्छा मैं रखता था। मैं रास्ते के स्थानों में कही अटका नहीं हूँ क्योंकि मुझे खोज थी अपने घर जाने की जहाँ से मैं आया हूं। तो असली नाम है अपनी आदि अवस्था में वापिस चले जाने का। यह है असली नाम दान। मुझे वापिस जाने का रास्ता मिल गया था। मैं अभी गया तो नहीं हूँ मगर अन्तिम मंजिल पर चल रहा हूँ। इस रास्ते में रुकावटें आती रहती हैं। सब से बड़ी रुकावट यह नाम दान देना है। गुरु बनकर नाम दान देना एक बड़ी भारी रुकावट है। इसलिये मैं किसी को नाम नहीं देता हूँ। मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि संसार की वासनायें तुम्हारे अन्तर में है जिसका ज्ञान मनुष्य को स्वयं नहीं होता मगर वह समझता है कि मेरे अन्तर वासना नहीं है। इसकी परीक्षा करने के लिये जब तुम साधन अभ्यास में बैठो, देखो ! तुम्हारे मन के अन्तर में किस किस प्रकार के विचार, भाव हैं और रुप बनते हैं। इससे तुमको स्वयं पता लग जायेगा कि तुम्हारे अन्तर में अभी वासनायें हैं। इसके विषय में

किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। तुम अपने स्वप्नों को ही देखा करो। यह स्वप्न क्या हैं। जो कुछ तुम्हारे अविकसित मस्तिष्क (**Sub-Conscious mind**) में संस्कार होते हैं–कुछ पहिले जन्म के कुछ इस जन्म के, वही तो रूप, रंग रेखा बन कर सामने आ जाते हैं। यदि यह विचार आते रहते हैं तो फिर नामदान आवश्यक है। इनको दूर करने के लिए वर्णात्मक नाम, जिसकी व्याख्या मैं कल कर दी है, को जो व्यक्ति जपता रहता है उसके मन में शान्ति आ जाती है। जब तक वर्णात्मक नाम का या ऊँची से ऊँची अवस्था का संस्कार इसके दिमाग में नहीं रहेगा, इस वर्णात्मक नाम से कोई लाभ नहीं होगा। यदि वर्णात्मक नाम का अन्तर में इस अवस्था का जो कूटस्थ कहलाता है या हमारी आदि अवस्था है, इसका संस्कार है या ख्याल है तो जिस तरह नींबू के शब्द से मुंह में पानी आ जाता है, इस शब्द को ध्यान देकर सुमिरन करते रहने से वह जो आदि अवस्था है इसका संस्कार हमारे अनाविषकृत मस्तिष्क (**Sub-Conscious mind**) पर अवश्य पड़ेगा। इसलिये यह राधास्वामी नाम मुझको महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज ने दिया था। यह नाम आदि अवस्था की अभिव्यक्ति (जहूर) की दशा है। यह एक शब्द गढ़ कर दाता दयाल ने मेरे मस्तिष्क में बिठा दिया है। इस राधास्वामी नाम के सुमिरन करने को मैं आपको मजबूर नहीं करता। चेला बनने और नाम दान को आये हो। मैं गुरु बनने को तुम को चेला नहीं बना रहा हूँ। मैं अपनी डयूटी पूरी कर जाना चाहता हूँ। चूंकि इस राधास्वामी नाम के सुमिरन से इस गति का इस आदि अवस्था का अब अनुभव हो गया है इसलिये मैं अपनी ओर से तुम को यही कहूँगा कि अपने मन की वृतियों को रोकने को इस राधास्वामी नाम का सुमिरन किया करो। यदि कोई व्यक्ति इस राधास्वामी का नाम का प्रयोग न करे तथा कोई और शब्द गढ़े जिसका संस्कार उस में दे दिया गया हो तो शिष्य इस संस्कार और भाव का जो गुरु ने अपने वर्णात्मक नाम में बतलाया हो वही लाभ उसको इस वर्णात्मक नाम के जपने से होगा जो मुझको राधास्वामी नाम जपने से हुआ है। कितनी स्वतंत्र शिक्षा है इस सन्तमत की।

उदाहरण के रूप में कहता हूँ। जैसे एक स्त्री है। इसमें स्त्रीपने के कुल गुण मौजूद हैं। इसमें पत्नी बनने के गुण भी हैं। बहिन, माँ बनने के गुण भी हैं। दुर्गा के





गुण भी है। अगर हम इस स्त्री को माता के शब्द से सम्बोधन करते हैं तो इसके और अन्य गुण, पत्नी पने, बहिनपने के सब गुण समाप्त हो जायेंगे। एक बच्चा निस्सदेंह जवान हो जाये, एक स्त्री को जिसको वह अपनी मां बनाता है इसके मन में यह विचार कभी नहीं आयेगा कि मेरी मां मैं स्त्रीपने, बहिनपने की दशा होगी। यही वर्णात्मक नाम का भी लाभ है।

साथ ही इसके रुप का ध्यान भी है। जो व्यक्ति इस रूप को जिसका निश दिन ध्यान करता है, वह उसको आदि अवस्था या कूटस्थ अवस्था नहीं समझेगा अथवा वह अनाम है, अकह है, अगाध है, उस रूप पर ऐसा विश्वास नहीं समझेगा अथवा वह अनाम है, अकह है, अगाध है, उस रूप पर ऐसा विश्वास नहीं होगा तो धुरपद या इष्टपद पर नहीं पहुँच सकता है। इसलिये यह आवश्यक है कि मनुष्य की श्रद्धा और विश्वास गुरु के रूप पर हो या अपने इष्ट के उस रूप पर हो जिसका साकार रूप वह अपने अन्तर में बनाता है और पूजता है। जब तक वह उस रूप को फकीर चन्द या महर्षि शिवब्रत लाल या बाबा सावनसिंह या राम जो अयोध्या में पैदा हुये जिन्होंने सीता ब्याही थी और रावन को मारा था या कृष्ण गोकुल में पैदा हुये थे जिसने गोपियों के साथ रास लीला की थी इत्यादि, ऐसा समझ कर उसके जो व्यवहारिक कृत्य है उनको ध्यान में रखेगा, वह अन्तिम पद पर नहीं पहुँच सकता। इसलिये कबीर साहब कहते हैं–

**गुरु को मानुष जानते, ते नर कहियें अंध।**
**दुखी होंय संसार में, आगे जम का फंद।।**
**गुरु किया है देह को, सतगुरु चीन्हा नाहिं।**
**कहें कबीर ता दास को, तीन ताप भरमाहिं।।**

जब तक यह दोनों शर्तें पूरी नहीं होगी, तुम चाहे जीवन भर सुमिरन और ध्यान करते रहो, तुम इस मन के चक्र से कभी नहीं निकल सकते। यह वह भेद है वह सच्चाई है जिसको मैंने मालिक की मौज आधीन प्रगट किया है। जिस समय जीव का ऐसा विश्वास वर्णात्मक नाम और गुरु के रूप पर हो जाता है तो इस साधन से पांच छः महीने में मनुष्य का मन प्राकृतिक नियमों के अनुसार जैसे कि मैंने नींबू का उदाहरण दिया है स्वयं निर्मल हो जाता है। तब महासुन्न की अवस्था

आ जाती है या दसवां द्वार लग जाता है। दसवां द्वार लगने तक हर एक जीव को उसकी वासनाओं के अनुसार अनेक प्रकार की भावनायें दृश्य और विचार पैदा होते रहेंगे जिनमें विवेक शक्ति भी आ जाती है। यह जितने ज्ञानी होते हैं जो काट छांट करते रहते हैं अपनी विवेक बुद्धि से कुछ सोचते रहते हैं। जब तक रामायण व योग आदि के विषय में यह सब के सब इन सपूर्ण विचारों को समाप्त नहीं कर लेंगे इनका दसवाँ द्वार नहीं लग सकता है। जब मनुष्य अपने अन्तर में साधन करता है इसके पिछले जन्मों के संस्कार उभर जाते हैं। अपने मन के अन्तर में कभी कभी ऐसे दृश्य देखता है जहां वह पिछले जन्मों में कहीं जन्म लिया हुआ हो। कई रूप इसके सामने ऐसे आ जाते हैं। जिनसे उसको पिछले जन्मों का कोई सम्बन्ध होता है। कई ऐसे विचार पैदा होते हैं। बुरे भी और अच्छे भी फुरते रहते हैं। इन सब का अभाव केवल सच्चे नाम के वर्णात्मक नाम के जिसमें जीव को पूर्ण और सब से उच्च होने का ख्याल दिया गया है और जिसका अकह, अपार, अगाध और अनामी का अवतार बताया गया है उसके ध्यान के बिना वह कटेंगे नहीं।

यह नाम है। यह नाम की महिमा है तो नाम की प्राप्ति के लिये, जीव का इस नाम पर पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है। जिस रुप पर जीव का पूर्ण विश्वास न हो कि वह अकह, अपार, अगाध और अनामी का अवतार है तब तक किसी आदमी का दसवाँ द्वार नहीं लग सकता है क्योंकि मनुष्य के अनाविषकृत (**Sub-Conscious mind**)मस्तिष्क में जन्म जन्मान्तरों के जो संस्कार भरे पड़े हैं उनका काटना सिवाय इस एक विश्वास के और कोई उपाय नहीं हो सकता है।

ऐ सारभेदी ब्राह्मण ! तेरे आने से दुखी तो मैं हुआ हूँ मगर मेरे दुखी होने से यदि तुमको सार भेद मिल जाये, तुमको सुख शान्ति मिल जाये तो मैं इस दुख को एक मुबारिक काम समझूंगा। जब जीव को दसवाँ द्वार लग जाता है फिर इसको वर्णात्मक नाम या रूप की आवश्यकता नहीं रहती है। फिर गुरु का रूप शब्द गुरु और इसके चरण प्रकाश रह जाते हैं मगर प्रकाश और शब्द तुम्हारा तब ही खुल सकता है जब तुम्हारा मन निर्मल हो जाये। मन को निर्मल करने को यह सुमिरन और ध्यान है और ध्यान से अनंतमय कोष के सब खेल समाप्त हो जाते हैं। केवल आनन्दमय कोष ही बाकी रह जाता है। अन्नमय कोष आत्मा – आनन्द है। ऐ





सारभेदी ब्राह्मण ! वह अपना रूप है। स्वंय प्रकाश स्वरूप है। तू स्वयं शब्द स्वरूप है। तू स्वयं शब्द है और इसका अंश है। यह सुरत इस देह में आई हुई है मगर इस माया के कारण तेरे ऊपर या हर एक जीव के ऊपर गिलाफ या खोल चढ़ गये हैं। इन खोलों के नाम हैं– अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष इन चारों से निकलने के लिये यह सुमिरन और ध्यान है। वर्णात्मक नाम का सुमिरन और गुरु स्वरूप का ध्यान करना है। बशर्ते कि जीव को वर्णात्मक नाम जो यह जपता है किसी गुरु का बतलाया हुआ है और उसको यह निश्चय हो जाये कि यह नाम आदि नाम है कृत्रिम नहीं है। गुणी नहीं है (निर्गुण है) और उसको उस रूप का विश्वास हो जाये कि वह उस मालिके कुल, परमतत्व, आधार का अवतार है, उसका स्वरूप है। फिर आपके अन्तर में सोहं गति आ जायेगी। कल का शब्द था–

**सहज किया उपकार, धन्य गुरुदेव गुसाईं।**

गुरु ने उपकार किया है। वह कैसे? तुमको सत्संग में बिठाकर वचन सुनाकर असली सार भेद दिया है, सतपद का रहस्य बताया है और गुत्थी खोल दी है।

**दया से बख्शी चरन की छाया, काग वृत्ति को हंस बनाया।**
**अब नहिं व्यापै काल न माया, सच्चा भया उद्धार।।**

दाता दयाल ने मेरे ऊपर यह दया कर दी है कि जिस ढंग से, जिस समझ से, जिस ज्ञान से और जिस अनुभव से मैंने समझा है, उससे मेरा उपकार हुआ है। वही समझ, वही ढंग, वही भेद मैंने ऐ सारभेदी ब्राह्मण ! तुम को भी बता दिया है। तुमको ही नहीं बताया किन्तु मेरे जिम्मे जो नाम दान की डयूटी थी मैंने उसका भेद सारे संसार को दे दिया है। जो लोग सतपद के जिज्ञासु हैं और अपने निज घर जाना चाहते हैं, उनको व्यक्त कर दिया है। दाता दयाल की आज्ञा है–

**तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेषा।**
**दुखी जीव को अंग लगाकर ले जा गुरु के देसा।।**
**तीन ताप से जीव दुखी है, निबल अबल अज्ञानी।**
**तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी।।**

तुमको मैं यह नाम दान दिये जाता हूँ। बहाना तो तुम्हारा है मगर मैं सारे संसार को नाम दान दिये जाता हूँ। जो व्यक्ति मेरे इस टेप रिकार्ड के वचनों को सुनेगा या मेरी इस पुस्तक को पढ़ेगा, उसको निज घर का रास्ता स्वंय मिल जायेगा। किसी परिश्रम की आवश्यकता नहीं रहेगी। यह तो है उपकार, जो दातादयाल ने मुझ पर किया है। मैं संसार को जो इस लाइन के जिज्ञासु हैं, कहे जाता हूँ। दूसरों पर न कोई उपकार कर सकता है और न किसी में उपकार करने की शक्ति है।

**सत संगत में वचन सुनाये, ऊंच नीच गति सकल बताये।**
**कथनी छुड़ा करनी करवाये, सुरत शब्द मत सार।।**
**पहिली श्रेणी सतसंगत की, दूजे साधु की पदवी।**
**तीजे हंस अवस्था बख्शी, चौथे सोहंकार।।**
**पंचम सतपद ले पहुँचाया, अलख अगम अनुभव दरसाया।**
**आवागवन का फन्द कटाया, राधास्वामी के दरबार।।**

मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ कि फकीर ! तू सच बता तेरा आवागवन का फन्द कट गया है। हाँ कट गया है। वह कैसे? जब से तुम लोगों से यह सुना है कि मेरा रुप तुम्हारी सहायता करता है और मैं वहां पर नहीं होता हूँ तो मुझ को हंस गति आ गई है।

पहिली श्रेणी सत संगत की, दूजे साधु की पदवी।

साधु की पदवी क्या है? मैं साधन करता था। मन को साधता था। जब मेरा मन सध गया, तब तरह तरह के दृश्य अर्थात गुरु का रूप आदि मेरे सामने आते थे। मैं इन में फंसा हुआ था। वह सहस दल कंवल के दृश्य आते थे। इनको मैं सत मानकर इनमें मैं फंसा हुआ था। जब से तुम लोगों से सुना है कि मेरा रूप तुम्हारे अन्तर में सहायता करता है तब से मुझे चेत हुआ है। किसी गाँव से एक आदमी मेरे पास आया। इसने मुझ को देखा। मेरे से चिपट गया और रोने लगा। मैंने उससे पूछा कि तुम कौन हो। उसने कहा– बाबाजी ! मैं अभ्यास किया करता था। एक गृहस्थी साधु से नाम लिया हुआ था। जब मैं अपने अन्तर में गया तो वहां देखा कि कि एक बड़ा भारी तालाब है मान सरोवर ! उसमें प्रकाश था चन्द्रमा चमक रहा था। जानवर





और हंस इसमें फिर रहे थे। फूल खिले हुये थे। वहां मैंने यह बात पूछी मगर कोई उत्तर नहीं देता था। एक व्यक्ति ने कहा कि होशियारपुर में सत्संग होता है। हां एक बाबा फकीर चन्द रहता है। वहीं जा। मैं होशियारपुर आ गया। आपको देखा तो आप वही साधु थे जिनको मैंने अन्तर में देखा था, मगर मैं नहीं था। इन अनुभवों ने मुझको हंस गति दे दी। जो कुछ इस व्यक्ति ने देखा वह इसके पुराने संस्कार थे, जो इसके अन्तर में फुरे थे। जिन जिन लोगों में से वह आया है वही संस्कार उसके सामने फुरे थे। मेरा इसका पिछले जन्म का सम्बन्ध रहा होगा, इसलिये वह मेरे सम्पर्क में आ गया है। इन अनुभवों ने मुझे हंस गति दे दी है कि यह जितना खेल है यह सब मन का है। यह पुराने संस्कारों के कारण फुरता है। जब हंस गति आ जाती है तो इन संस्कारों को छोड़कर अपनी प्रकाश और शब्द रूपी जो आत्मा है सोहंकार, इसमें ठहरने की कोशिश करने लगा।

यदि मैं दातादयाल का गुणगान करता हूँ तो उचित ही है कि उन्होंने मुझ पर बड़ी दया की है। उन्होंने बड़ी युक्ति से निकाला है। यह है सोहंकार। जब यह ज्ञान हो जाये कि सब अपने ही मन की कल्पना है तो फिर क्या करना है।

**तुम उलट चलो असमान, नीचे क्यों रहना।**
**नीचे नीचे की संगत, नीचे भाव से नीच की रंगत।**
**त्याग कुसंग कर सतसंगत, भव के दुख सुख क्यों सहना।।**

इस सत्संग से जो देता रहता हूँ, अधिकारी जीवों को अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

कहा गया है– 'गुरु मिले तब कहा कमाना' गुरु ने भेद दे दिया है।

**सीधा मारग जगत का, उल्टा सन्त का पंथ।**
**जो उल्टे मारग चले, सो पावे निज कंत।।**

फिर उलटा मार्ग क्या है? अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञान मय कोष से निकल कर आनन्द मय कोष आता है, जिसका नाम है सोहंग – 'मैं हूँ' तुम्हारा निज स्वरूप। तुम्हारी आत्मा का स्वरूप निज स्वरूप नहीं है। आत्मा और है और तुम और हो। आत्मा में प्रकाश और शब्द रहता है। तुम वह हो जो प्रकाश और शब्द में रहते हुये प्रकाश को देखते और शब्द को सुनते हो। तुम

या मैं क्या हैं? तुम वह हो जिसको अकह, अपार, अगाध, अनामी कहा गया है। सबसे पहिले सत को असत ने ढक रखा था। वह है हमारा असली रूप। तो नीचे का जितना खेल है सब माया है।

**नीचे माया नीचे काया, नीचे झांई नीचे छाया।**

इसके भरम में जो कोई आदमी, रूप, रंग, और रेखा जो अन्दर में प्रगट होती है, इनको सत मानकर इनमें विचरता रहता है, उसके जग का बन्धन कभी कट नहीं सकता है। जो आदमी जीवन भर महर्षि जी महाराज या बाबा फकीर या बाबा सावन सिंह जी के रूप से बंधा रहेगा, वह इस माया के जाल से निकल नहीं सकता यद्यपि वह माया बहुत ऊंचे दर्जे की है। माया यहां तक थोड़े ही है। तुलसीदास जी कहते हैं–

**गो गोचर जहां मन जाई।**
**तहां लग माया जानहु भाई।।**

यह माया का विस्तार बहुत ऊंचा है। इससे निकलना है। तुम को अधिकारी समझकर ऐ सारभेदी ब्राह्मण! भेद दिये जाता हूँ। अब अमल करना तुम्हारा अपना काम है। जो मेरी डयूटी है वह मैं पूरी कर जाना चाहता हूँ। जो ड्यूटी तेरी है तू इसको पूरी करना। तेरी करनी तेरे साथ, मेरी करनी मेरे साथ। रहस्य बताना था वह मैंने बता दिया हैं।

**सहज किया उपकार, धन्य गुरु देव गुसाईं।**

.....

**पंचम सतपद ले पहुँचाया, अलख अगम अनुभव दरसाया।**
**आवागवन का फंद कटाया, राधास्वामी के बलिहार।।**

मैं अपने आपसे पूछता हूँ कि क्या तेरा आवागवन चला गया है। हां चला गया है। वह कैसे? वह इस प्रकार–मैं अभ्यास करता हुआ चलता हूँ। इस मन के चक्र तो समाप्त हो गये। अब रह गया शब्द और प्रकाश, मैं इसमें चलता रहता हूँ। मैं उस वस्तु को ढूंढता रहता हूँ जो प्रकाश में रहती हुई प्रकाश को देखती है और शब्द में रहती हुई शब्द को सुनती है। वह जब कभी शब्द सुनते सुनते शब्द में लय हो जाती है तो अपना अस्तित्व खो जाती है। वह भूल जाती है कि शब्द भी है या





नहीं, प्रकाश भी है या नहीं। यह सब लोप हो जाते हैं। जब मैं होश में आ जाता हूँ तो सोचता हूँ कि कहां पहुँचा हूँ, मैं कौन हूँ। मैं चेतन का एक बुलबुला हूँ, जो शब्द के प्रगट होने के कारण एक चेतन्यता मेरे शरीर में आ जाती है। तो जब शब्द प्रगट हुआ तो चेतन्यता भी प्रगट हो गई। जब तक शब्द की मौज है, मालिक की मौज है वह चेतना कभी शरीर में रहती है कभी मन में रहती है कभी सहसदल कंवल में रहती है, कभी सतपद में रहती है। फिर मैं कौन हूँ। मैं हुँ एक चेतन्य शक्ति या चेतन का बुलबुला, जो मौज मालिक से प्रगट होता है। उसकी जब मौज होगी, इसमें वापिस चला जाऊंगा। यह सारा संसार इस मौज के आधीन बनता और बिगड़ता रहता है। मेरे मन के अन्तर एक मायाव्यापी बुद्धि आ गई है जिसने मुझ को भरमाया है। यह माया ही बन्धन का कारण थी। मेरी ही बुद्धि थी और इसी बुद्धि ने इसको साफ कर दिया है। मुझे यह भ्रम ही नहीं रहा कि आवागवन होता है या नहीं। यह तो इसकी रचना है। एक तत्व हिलोर में है। वह हिलोंरे मारता रहता है। उसमें सूर्य, चन्द्र सितारे, लोक लोकान्तर, देवी देवता, ब्रह्म, विष्णु महेश, ब्रह्म लोक, विष्णु लोक, शिव लोक सब बनते रहते हैं और इसी में समाते रहते हैं। अब आवागवन होता है तो उसको होता है। यदि नहीं होता तो उस शक्ति को नहीं होता। मुझको एक भ्रम हो गया था। गुरु मिले जिन्होंने मेरा सारा भ्रम अब समाप्त कर दिया है। अब बात समाप्त हो गई है। अब मैं शान्त रहता हूँ। वह जो मन के अन्दर कल्पना थी जिसके कारण मैं दौड़ता फिरता था जैसे कि हमारे सारभेदी पंडित है, इनको भी माया ने भरमाया हुआ है। माया का झगड़ा किसी संत सतगुरु के चरणों के प्रताप से कट जाता है उनका, जिस पर उसकी मौज होती है। मैं तो समझता हूँ कि यह जो कुछ हो रहा है हमारे अपने वश में नहीं है। समझाने बुझाने के लिये जो कुछ चार दिन में कहा, है यह भी माया है। गुरु बनकर उपदेश देना भी माया है, चेला बन के उपदेश लेना भी माया है। मगर जब यहां से वृती चली जाती है, चुप हो जाना पड़ता है। यहाँ कहा गया है कि सब लोग चुप हो गये। मैं भी चुप हो जाता हूँ।

**खमोशी मानीदारद कि दरगुफ्तन नमी आमद'।**

अब यह नामदान का सत्संग समाप्त करता हूँ और होश में में आता हूँ।

सुना करता था कि सन्तों में बड़ी-बड़ी शक्ति होती है। संत जो कहते हैं वह पूरा हो जाता है। तो मैं सच्चे हृदय से यह चाहता हूँ और आशीर्वाद देता हूँ कि ऐ सारभेदी ब्राह्मण! तेरा यह जन्म सफल हो जाये। तुम को शान्ति मिले। सारी भ्राँति दूर हो जाये। इस जीवन की यात्रा जहां तक हो सके परोपकार में काट दी जाये यद्यपि परोपकार भी माया ही है। निज उपकार भी माया ही है मगर इस माया देश में रहते हुए हमको इस कर्म करने के लिये विवश होना पड़ता है। मैंने तेरा गोत्र बदल दिया है। भविष्य में तेरी सन्तान, पोते, पड़ पोते सब सारभेदी ब्राह्मण कहलायेंगें। तुम सब लोग सुखी रहोगे। मेरे पास जो कुछ था वह मैंने तुमको दे दिया है। कल सुबह तुम्हारे मुर्हुत के अनुसार तुमको संस्कार (**Touch**) दे दूँगा। फिर मैं अमृतसर चला जाऊंगा। तुम अपने घर चले जाना।

# पञ्चम सत्संग

**( मानवता मन्दिर होशियारपुर २०-११-६९ )**

## नाम दान या दीक्षा का दिन

ऐ सारभेदी पंडित जी! तुम नाम दान के लिये आये हो। सुनो कबीर साहब ने नाम दान की शर्तें रखी थीं-

**'कर नैनों दीदार, वह पिंड से न्यारा है।'**

कहते हैं कि वह मालिक पिंड से अलग है। एक शर्त यह भी रखी थी

**'कर नैनों दीदार, महल क्षमा चित धारो।**

**काम क्रोध मद लोभ बिसारो, शील संतोष क्षमा चित धारो।**

**मद्द मांस मिथ्या तज डारी।**

दूसरे शब्द में शर्तें हैं-

**चोरी जारी निन्दा जारो, मिथ्या तज सतगुरु सिरधारो।**





**सत्संग कर सतनाम उचारो।**

मैंने आपको पर्याप्त सत्संग दे दिया है। अब केवल सत नाम का उच्चारण करना है। सत नाम का अर्थ भी मैंने आपको समझा दिया है। सतनाम असली तत्व है। जो सत वस्तु है वह सार है। जो इस की गति है और उससे जो पहला शब्द निकलता है उसका उच्चारण किया करो। इस अवस्था के कई नाम महापुरुषों ने रखे हुए हैं। मुझे मेरे दातादयाल ने इस असली सतनाम, आदि नाम, आदि गति जो इस सारतत्व की है, उसका वर्णात्मक नाम राधास्वामी के शब्दों में बतलाया था।

**राधा आदि सुरत का नाम।**

**स्वामी आदि शब्द पहिचान।।**

**राधास्वामी गुरु को जान।**

हिन्दू शास्त्रों ने इसको शब्द ब्रह्म कहा है। उस वर्णात्मक नाम के सहारे अपने मन को अजपा जाप करते हुये रोकने का प्रयत्न किया करो। प्राचीन समय में इस साधन को मूलाधार से शुरू किया जाता था। प्रणायाम के द्वारा मन को रोका जाता था। आज के युग में आयु थोड़ी हो गई है। शारीरिक स्वास्थ्य ठीक नहीं स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। लोगों का ब्रह्मचर्य स्थित नहीं रहता है। इसलिये सरल विधि यह है। अपनी असली सुरत को अपने स्वामी अर्थात सर्वाधार से मिलने के लिये शान्ति के लिये शिवनेत्र अर्थात तीसरे नेत्र से ही यह सुमिरन दिया जाता है। जब तुम ऐसा करोगे तो आंख, कान और मुँह (जुबान) बन्द करने पड़ेगे। दोनों पुतलियों को इकट्ठा करना पड़ेगा। जिस समय मन की समाधि लगनी शुरु होगी उम समय पुराने संस्कार जो चिदाकास पर पड़े हुये हैं वह उभर खड़े होंगे। फिर कबीर साहब कहते हैं-

**डाकिनी साकिनी बहु ललकारें।**

**जम किंकर धर्म दूत हुंकारे।।**

**सत नाम सुन भागें सारे।**

**जब सतगुरु नाम उचारा।।**

जिस समय तुम्हारा मन एकाग्र होगा, मन पर पड़े हुये विचार और फुरेंगे। यदि बुरे संस्कारों का प्रभाव है तो साँप बिच्छू या डरावनी शक्लें दिखाई

देंगी। यदि अच्छे संस्कार हैं तो देवी देवता, सुन्दर स्थान आदि दिखाई पड़ेंगें। तुम इनमें फंसना नहीं और न डरना चाहिये, क्योंकि यह सब हैं तो नहीं मगर केवल संस्कारों के चित्र चित्त या दिमाग पर पड़े हुये हैं। वह सिनेमा के चित्रों की तरह प्रगट होते रहेंगे। जब तुम अजपा जाप से यहां साधन करोगे तो तुम्हारे अन्तर में मन एकाग्र होगा। वहां ज्योति या प्रकाश होगा। उस प्रकाश में अपने ध्यान को जोड़ो। यदि तुम में प्रेम भक्ति का भाव है तो गुरु स्वरूप को अपने सामने लाओ। यदि ऐसा विश्वास भगवान के सगुण रूप पर हो तो उसका साधन किया करो। यदि नहीं होता है तो केवल ज्योति को देखा करो। अजपा जाप से राधास्वामी नाम का सुमिरन करते रहो। ऐसा करने से तुम्हारे अन्तर में जिस तरह आरती होती है मन्दिरों में घंटा शंख बजता है, ऐसी आवाजें तुमको सुनाई देंगी। इस आवाज को जितना समय मिले तुम सुनते रहो मगर तुम सुनोगे तब ही जब तुम में प्रेम भाव होगा जिस तरह कुवाँरी लड़की को विवाह कराने के समय प्रेम, लगन और चाव होता है। यही बात कबीर साहब ने कही है:–

**पहिले ध्यान गुरु का धारो, सुरत निरत मन पवन चितारो।**
**सुहेलना धुन में नाम उचारो, तब सतगुरु लहो दीदारा।।**

मुझे पता नहीं इससे कबीर साहब का क्या भाव है। यह सब वाणी जाल है। मैं जो कुछ समझता हूँ वही कहता हूँ। अपने अन्तर में सगुण स्वरूप के दर्शन तब ही हो सकते हैं जब सुहेलना की अवस्था साधक में पहिले आ जाये। सुहेलना से कबीर साहब का क्या अभिप्राय है मुझे पता नहीं। मैं यह समझता हूँ कि जब कुवाँरी लड़कियों के विवाह होते हैं तब सुहाग के गीत गाये जाते हैं या सोहल गाये जाते हैं। सोहल के गाने से लड़कियों में उमंग या चाव मालिक से मिलने का या दर्शन का नहीं पैदा होगा, किसी का भाव होना चाहिये। मुझे अपना जीवन याद आता है जब मैं इसी भावना वंश सन १९०५ ई० में दाता दयाल के चरणों में लाहौर गया था। जब मैंने बाहर से द्वार खटखटाया था। उस समय दाता दयाल ने अन्दर से आवाज दी कि कौन है। मैंने गाकर कहा–

**मेरे प्यारे कुंडलिया खोल, तेरा फकीर बाहर खड़ा।'**

ऐ सारभेदी ब्राह्मण! सतों का मार्ग प्रेम या भक्ति का मार्ग है। यह लगन





और तड़प का रास्ता है। बिना प्रेम के त्रिकुटी के स्थान तक व्यक्ति पहुँच नहीं सकता है मगर जिन जीवों ने पिछले जन्म में कुछ प्रेम के दर्जे तय किये हुए होते हैं उन्हीं के लिये इस जन्म में परमार्थ का शौक भी होता है। जिनमें प्रेम नहीं है उनको विवेक दृष्टि से समझ देने की आवश्यकता है। इनको मन का रूप समझा बुझाकर सीधे सुन्न या महासुन्न, सविकल्प और निर्विकल्प समाधि से गुजारने की आवश्यकता है। अब तुम्हारे लिये सुहेलना धुन की आवश्यकता नहीं है। इस अवस्था में प्रबल लगन या चाव की आवश्यकता पड़ती है। मैंने तुमको को ४–५ सत्संग इसलिये दिये हैं ताकि विवेक दृष्टि से पहिली श्रेणी की दशा तुम में आप आ जाये। तुम देखो! एक लड़की ने एक विवाह करके फिर दूसरा विवाह कराया है? क्या फिर दूसरे अवसर पर इसके अन्तर वही पहिला भाव आ सकता है। नहीं आ सकता। यह जितने विद्वान पंडित होते हैं धर्मों की छान–बीन करने वाले जिनमें तर्क बुद्धि है, यह सब लोग पिछले जन्मों में इस पहिली श्रेणी से गुजर चुके हैं। यह आवश्यक नहीं कि वह प्रेम का भाव जिसका उदाहरण मैंने लड़की की शादी से दिया है, इनमें भी पैदा किया जाये। इसलिये पूरे गुरु की आवश्यकता प्रतीत होती है जो दूसरे की प्रकृति को देख कर उसको इष्ट पद पर जाने का इशारा करे। फिर इष्ट पद क्या है? परम शान्ति यह जितनी अभ्यास की श्रेणियों हैं यह मन की विभिन्न प्रकार की गतियों, खेलों और भाव विचारों के खेल हैं। जब तक यह भाव विचार काबू में नहीं आ जाते तब तक शान्ति नहीं मिल सकती है। यह नाम केवल इस मन के भाव, विचार और आशाओं को काबू में लाता है। मन को कंट्रोल में रखने के लिये ही यह साधन हैं। त्रिकुटी में जब गुरु स्वरूप प्रेम के कारण प्रगट हो जाता है तो मन आप ही आप ठहर जाता है। फिर मन लहरें नहीं मारता है। जब मन लहर नहीं मारता है तो इसको ठहराव मिल जाता है। इसको सोचने समझने का अवसर मिल जाता है। इसलिये त्रिकुटी के स्थान को ज्ञान का स्थान कहते हैं। बुद्धि के निश्चयात्मक होने का स्थान कहते हैं। वहाँ पर जो धुन उठती है या आवाज होती है, उससे मनुष्य के विचार ठहर जाते हैं। वह नष्ट नहीं होने पाते किन्तु काबू में आ जाते है। यह है ओउम् के ऊपर बिन्दु। तुम में जब यह अवस्था आ जाये तब फिर मेरे पास आ जाना। लाल रंग का सूर्य तुम्हारी अपनी ही वृतियों के एकाग्र होने

से प्रगट होता है। अन्तर में जो आवाज होती है वह बादल की गर्ज या मृदंग की आवाज में सुनाई देती है। उस समय फिर मेरे पास आ जाना। इसके आगे अ–उ–म् से संकल्प विकल्प उठते हैं, ठहरते हैं, और नष्ट होते हैं: जब यह सब समाप्त हो जाते हैं और केवल बिन्दु ही रह जाता है, उस बिन्दु में प्रवेश होकर सुन्न समाधि या सविकल्प समाधि या दसवाँ द्वार या निर्विकल्प समाधि आ जाती है। जब यह समाधि लग जाती है तो यह बिन्दु का खेल है या ओंकार का खेल है। अब तुम समझ गये होगे कि बिन्दु से क्या अभिप्राय है। मन के संकल्प विकल्प समाप्त होकर जब मन अकेला रह जाता है, यह बिन्दु है। इस बिन्दु के अन्तर में प्रवेश करने से सविकल्प और निर्विकल्प समाधि लग जाती है। जितना सुन्न, महासुन्न सविकल्प और निर्विकल्प अवस्था का खेल है वह इस ओउम् के ऊपर जो बिन्दु है, जिसका संकेत हिन्दू शास्त्र करते हैं, इसका खेल है। आत्मिक दुनिया इसके आगे है। इसका कोई सम्बन्ध इस बिन्दु से नहीं है।

आगे जब साधन अभ्यास करके आओगे तब मैं तुम्हारी शक्ल का देखूंगा कि तुमने क्या कमाई की है। तब फिर आगे का संस्कार दूंगा।

### शब्द

**आजा शरण बचा लूंगा।।**
**तू है मेरा मैं हूँ तेरा, तन मन धन से प्यारा।**
**तू आंखों का तारा मेरे, मैं तेरा रखवारा।। बचा लूंगा।।**
**जुज कुल का है, कुल जुज का है, घर मन में परतीती।**
**जब जुज है तब कुल से प्यार कर सीख शब्द मत रीती।। बचा०**
**स्वारथ वश नहिं बना हूँ तेरा, नहिं स्वारथ मन मेरे।**
**परमार्थी परम उपकारी, क्या आया चित तेरे ।। बचा०।।**
**तन के बन्धन मन के बन्धन के बन्ध बँधाना।**
**बंध बंध में बंध बंध में, बंध बंध उरझाना।। बचा लूंगा।।**
**जब नहिं कोई तेरा सहाई, मैं ही रहा सहाई।**
**अब भी सदा सहाई तेरा, तज दुर्मति दुचिताई।। बचा०।।**





**उलटी समझ तेरे मन भाई, मन से मुझे भुलाया।**
**भूला भटका देख के अब मैं, तुझे बचावन आया।। बचा०।।**
**राधास्वामी दीन दयाला, दीन अधीन सहाई।**
**परम सनेही परम हितैषी, ले इनकी शरनाई।। बचा०।।**

## साधन ज्ञान विचार

**नामी हुए उसी दिन जिस दिन, चित से गुरु का नाम लिया,**
**जीते यश कीर्ति प्रतिष्ठा, और पीछे सत धाम लिया।।**
**अर्थ लिया और धर्म लिया, और मोक्ष लिया और काम लिया।**
**चार पदारथ हाथ में आये, तब जाकर विश्राम लिया।।**
**मन चंचल की दुविधा मेटी, शान्ती आठों याम लिया।**
**सर पर बार न आने पाया, काल चक्र को थाम लिया।।**
**जीने की नहिं मन में इच्छा, मरने का डर नहिं करते हैं**
**अजर अमर है रूप हमारा, प्रेमी जन कब डरते हैं।।**
**भार विपत्ति आपत्ति और दुख का, सर पर कभी न धरते हैं।**
**कमल फूल ज्यों, हम सब सागर के, जल में रहकर तरते हैं।।**
**मन का घोड़ा रान के नीचे, हाथ में उसकी लगाम लिया।**
**सर पर वार न आने पाया, काल चक्र को थाम लिया।।**
**खाकर दान भक्ति का हम, प्रेम का पानी पीते हैं।**
**रुष्ट पुष्ट होकर संसार में, सुख आनन्द से जीते हैं।।**
**हम नहिं हिंसक हंस हैं पूरे, वन के सिंह न चीते हैं।**
**विरह बान के फटे कलेजे, के चीरे को सीते हैं।।**
**गुरु भक्ति का सौदा सच्चा, बिना मोल बेदाम लिया।**
**सर पर वार न आने पाया, काल चक्र को थाम लिया।।**
**ब्राह्मण को मिला ब्रह्म, क्षत्री क्षत्रपति कहलाता है।**
**वैश्य को धन है शूद्र कला, कौशल की पदवी पाता है।**
**गाने बजाने वाला तान से, तान को अपनी मिलाता है।**

योगी सिद्धी शक्ति का भूखा, योग के मारग जाता है।।
हमको नाम की लगन लगी, ऊँचे चढ़ नाम का ग्राम लिया।
सर पर बार न आने पाया, काल चक्र को थाम लिया।।
सहस कमल चढ़ त्रिकुटी आये, ओउम् की बानी सहज सुनी।
सुन्न में सहज समाधि रचाई, महा सुन्न के बने मुनी।।
भँवर गुफा चढ़ बंसी बजाई, अवगुन मेट के हुए गुनी।
सत्त धाम धुर की धुन सुन, सत धुन बीन के धुन के धनी।
अलख अगम पर बैठक ठानी, राधास्वामी धाम लिया।
सर पर बार न आने पाया, काल चक्र को थाम लिया।।

अबधू छोड़ो मन विस्तारा।
सो पद गहो जाहि से सदगति, पारब्रह्म से न्यारा।। १।।
नहीं महादेव नहीं मुहम्मद, हरि हजरत तब नाहीं।
आतम ब्रह्म नहीं तब होते, नहीं धूप नहीं छाही।। २।।
अस्सी–सहस मुनी तब नाहीं, सहस अठासी मुलना।
चांद सुरज तारागन नाहीं, मच्छ कच्छ औतारा।।३।।
वेद कितेब सिम्रित तब नाहीं, जीव न पारख आये।
आदि अन्त मध मन ना होते, फिर भी पवन न पानी।। ४।।

बांग निवाज कलमा ना होते, नहीं रसूल खुदाई।
गूँगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै, अनहद डंक बजाई।। ५।।
कहै कबीर सुनो हो अबघू, आगे करो विचारा।
पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, किरतिम किन उपचारा।। ६।।